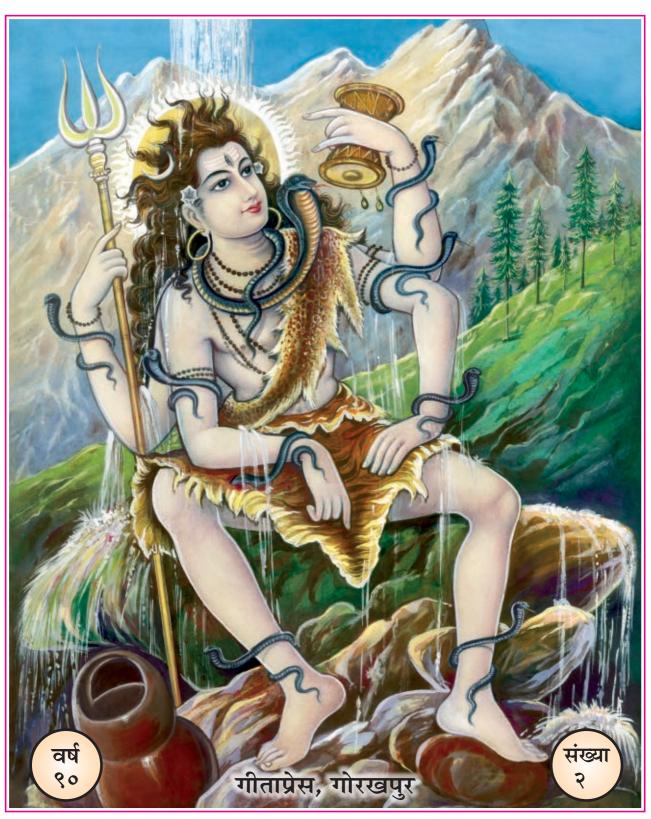
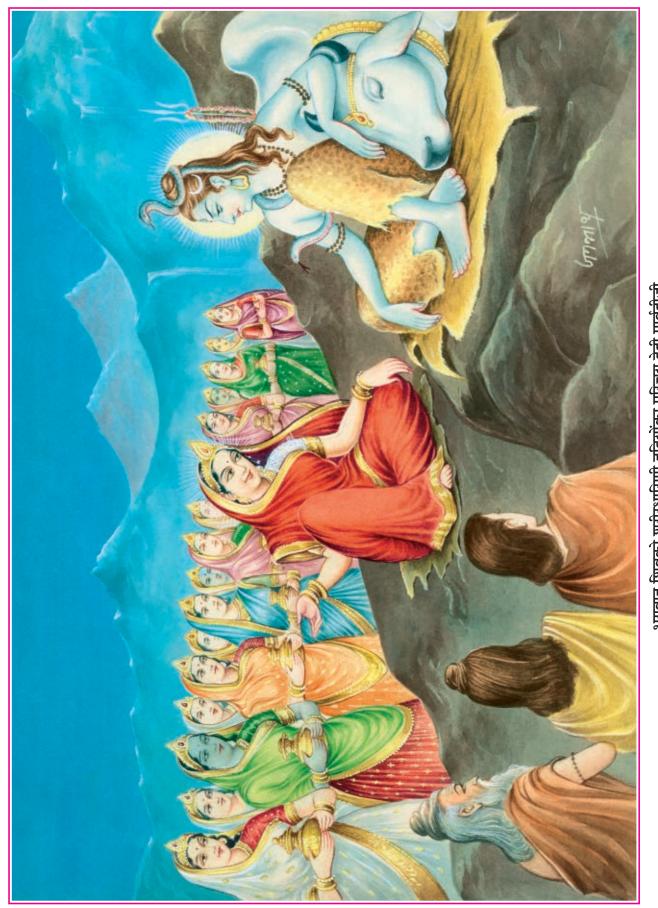
कल्याण



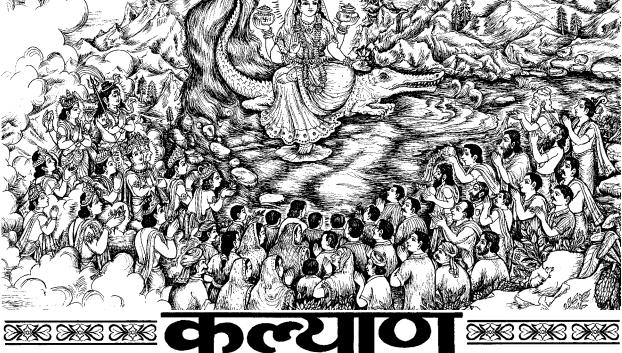
गंगाधर भगवान् शंकर





भगवान् शिवको शरीरधारिणी नदियोंका परिचय देती पार्वतीजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाविशिष्यते॥



ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्ये नमोऽस्तु ते॥ नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्ये ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष १० गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, फरवरी २०१६ ई० पूर्ण संख्या १०७१

गंगा सर्वसरिद्वरा

एषा सरस्वती पुण्या नदीनामुत्तमा नदी। प्रथमा सर्वसरितां नदी सागरगामिनी॥ विपाशा च वितस्ता च चन्द्रभागा इरावती। शतद्रूर्देविका सिन्धुः कौशिकी गौतमी तथा॥ यमुनां नर्मदां चैव कावेरीमथ निम्नगाम्।

इमास्तु नद्यो देवेश सर्वतीर्थोदकैर्युताः। उपस्पर्शनहेतोस्त्वामुपयान्ति

तथा देवनदी चेयं सर्वतीर्थाभिसम्भृता। गगनाद् गां गता देवी गङ्गा सर्वसरिद्वरा॥

[भगवती पार्वती भगवान् शंकरसे कहती हैं —] हे देवेश्वर! ये निदयाँ सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे सम्पन्न हो आपके स्नान और आचमन आदिके लिये अथवा आपके चरणोंका स्पर्श करनेके लिये यहाँ आपके निकट

आ रही हैं। ××× ये निदयोंमें उत्तम पुण्यसिलला सरस्वती विराजमान हैं, जो समुद्रमें मिली हुई हैं। ये समस्त सिरताओंमें प्रथम (प्रधान) मानी जाती हैं। इनके सिवा विपाशा (व्यास), वितस्ता (झेलम), चन्द्रभागा (चिनाव), इरावती (रावी), शतद्रू (शतलज), देविका, सिन्धु, कौशिकी (कोसी), गौतमी (गोदावरी), यमुना,

नर्मदा तथा कावेरी नदी भी यहाँ विद्यमान हैं। ये समस्त तीर्थोंसे सेवित तथा सम्पूर्ण सरिताओंमें श्रेष्ठ देवनदी गंगादेवी भी, जो आकाशसे पृथ्वीपर उतरी हैं, यहाँ विराजमान हैं। [महाभारत-अनुशासनपर्व अ० १४६]

राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ (संस्करण २,१५,०००) कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, फरवरी २०१६ ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या पुष्ठ-संख्या विषय विषय १६ - साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)......२६ १ - गंगा सर्वसरिद्वरा...... ३ १७- आजके सत्संग (श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र'जी) २ – कल्याण...... ५ [प्रेषक—श्रीजनार्दनजी पाण्डेय]२८ ३ - गंगाधर भगवान् शंकर [आवरणचित्र-परिचय] ६ ४- गंगा-गौरव.....७ १८- जन्मान्तरीय पुण्यकर्मोंसे सत्संगकी प्राप्ति२९ ५- ज्ञानकी दुर्लभता और उसकी प्राप्तिका उपाय १९ - उतार-चढाव [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)९ [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]३० ६ - सरस्वती-वन्दना [कविता] (डॉ० श्रीगार्गीशरणजी मिश्र 'मराल') १० २०- लक्ष्मी गुणवानुके पास जाती हैं ३१ ७- भगवान् कपिलका प्रादुर्भाव २१ - गंगावतरण (डॉ० श्रीकमलाकान्तजी शर्मा 'कमल', (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) ११ एम०ए०, पी-एच० डी०)३२ ८- संसारमें मेरा कौन? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी २२- संतकी दुर्लभता और महत्ता (श्रीभँवरलालजी परिहार)....... ३५ २३- चोरीसे नहीं जाऊँगी [श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग] श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)......१३ ९- भगवती गंगा मंगलका विस्तार करें१४ (आचार्य श्रीरामरंगजी) ३८ १०- निश्चिन्त हो रहो (संत श्रीभपेन्द्रनाथजी सान्याल)......१५ २४- श्रीगंगाजीकी रथयात्राका विधान ११- मकर-संक्रान्तिपर्वपर गंगासागरयात्रा (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी त्रिपाठी).. १६ (डॉ० श्रीश्याम गंगाधरजी बापट)......३९ १२- साधकोंके प्रति— २५- गोवंशकी रक्षा कैसे हो? (डॉ० श्रीब्रह्मानन्दजी)......४० (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १७ २६ - गोपी-प्रेमका वैशिष्ट्य (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज).....४२ १३- श्रीगंगाजीका तीर्थत्व एवं माहात्म्य २७- साधनोपयोगी पत्र.....४३ (मलुकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज) २० २८- व्रतोत्सव-पर्व [चैत्रमासके व्रतपर्व]४५ १४- गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी गंगा-स्तुति (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)२१ २९ - कृपानुभूति४६ १५- माँ गंगाके जलप्रवाहमें प्रभुका प्रेमप्रवाह बहता है ३०- पढ़ो, समझो और करो.....४७ (श्रीबालकृष्णजी मेहता)......२४ ३१ - मनन करने योग्य५० चित्र-सूची १- गंगाधर भगवान् शंकर......(रंगीन)....आवरण-पृष्ठ ५- जहाजपर छिपता बालक हरनाम (इकरंगा) ३० २ - भगवान् शिवको शरीरधारिणी ६ - भक्तपदानुसारी भगवान् ('') ३५ ७- मुनि दुर्वासाका भगवान्को शरणमें आना.. (😗)...... ३६ निदयोंका परिचय देती पार्वतीजी (") मुख-पृष्ठ ३ - सीताजीको गंगा-महिमा बताते वाल्मीकि ... (इकरंगा) २३ ८- हनुमान्-सीता-संवाद १९ ९ - लंकासे लौटते हनुमान्जी ('') ३९ ४- अंगिरा-शौनक-संवाद (") २६ जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ एकवर्षीय शुल्क पंचवर्षीय शुल्क जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ जगत्पते । गौरीपति विराट जय रमापते ॥ जय अजिल्द ₹२०० अजिल्द ₹१००० विदेशमें Air Mail) वार्षिक US\$ 45 (₹2700) सजिल्द ₹११०० सजिल्द ₹२२० Us Cheque Collection सजिल्द शुल्क पंचवर्षीय US\$ 225 (₹13500) Charges 6\$ Extra संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक —राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित website: www.gitapress.org e-mail: kalyan@gitapress.org € (0551) 2334721 सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें। Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

संख्या २] कल्याण याद रखो-वाणीका संयम करनेका एक ही गुणोंको अपने अन्दर उतरता देखे—'करुणा, दया, प्रेम, अहिंसा, अस्तेय आदि गुण मुझमें आ रहे हैं। उपाय है—भगवन्नाम-जप एवं स्वाध्यायको वाणीका विषय बना लेना। जीभके लिये भगवान्के नामका जप नाम मुँहमें आते ही अपनेको माने—'मैं पवित्र हुँ, मैं सर्वथा पवित्र हैं।' ही एकमात्र काम रह जाय, दूसरे किसी भी कामके लिये उसमेंसे समय निकालना न पडे। जो व्यक्ति इस *याद रखो*—नाम-नामी एक हैं, अतएव भगवानुके प्रकारका जीवन बना लेता है, वह जहाँ रहता है, वहीं नाम-जपके समय यह अनुभव करे कि 'भगवान् मेरे उसके द्वारा जगत्को एक बहुत बड़ी चीज अपने-आप हृदयमें आ रहे हैं, भगवानुकी झाँकी मेरे हृदयमें उतर अनायास ही मिलती रहती है। रही है।' नामकी शरण हो जाय—दूसरे किसी साधनकी वाणीको भगवानुके नाममें लगा दे। कम-से-कम आकांक्षा एवं अपेक्षा न करे। भगवानुके नामपर जितनी बात, जब जिस रूपमें बोलनी आवश्यक हो, अपनेको निर्भर कर दे। नाम सर्वशक्तिमान् है-यह उतनी ही, उस रूपमें बोले, बाकी समयमें अपनेको विश्वास करके उसीपर निर्भर हो जाय अर्थात् अपनेको मौन-सा करके भगवानुके नामका जप करता रहे। उसपर छोडकर निश्चिन्त हो जाय। अपना भला कब, जीभसे भगवानुका नाम लेता रहे और अपने कानोंद्वारा कैसे होगा, इसके विषयमें निश्चिन्त हो जाय। शरणागत कुछ माँगता नहीं, वह कुछ चाहता नहीं, वह भगवान्पर उसे सुनता रहे। जीभ स्थूल अंग है; कर्मेन्द्रिय है, पर यदि यह ही निर्भर रहता है—सब प्रकारसे। अपना भला किसमें भगवानुके नामके साथ लगी रहती है तो यह जीवनको है, इसका निश्चय भी वह नहीं करता। वह भगवान्से उत्तम स्तरपर खींच ले जाती है। फिर तो जीवनके कहता है—'मेरा भला किसमें है तथा उसे कैसे प्राप्त अन्तमें भगवानुका नाम मुखसे आया कि काम बना। करना है-यह आप जानें। नाथ! मेरी तो एक ही याद रखो-भगवान्के नाम-जपका अभ्यास भावना है-आपकी शक्तिसे ही सब काम होगा और होनेके बाद मनसे सोचते और हाथसे काम करते वहीं काम होगा, जो आप चाहेंगे। आप वहीं चाहेंगे, रहनेपर भी अभ्यासवश जीभसे नाम अपने-आप निकलता जिसमें मेरी भलाई होगी। रहेगा। सारे शास्त्रोंके सत्संगका (स्वाध्यायका) फल श्रीभगवान्पर विश्वास रखकर उनका नाम-जप भी तो यही है कि भगवानुके नाममें रुचि हो जाय। करना चाहिये और उनकी कृपापर भरोसा करके श्रीभगवानुके एक भी गुणका रहस्य, एक भी अपनेको सर्वतोभावसे उन्हींपर छोड देना चाहिये। नामकी महिमा, एक भी चरित्रका प्रभाव, एक भी याद रखो-संतों-महात्माओंकी दृष्टिमें सबसे शक्तिका तत्त्व जान लिया जाय अथवा एक भी रूपकी सरल साधन है-नामका अभ्यास। मुखसे निरन्तर जरा-सी भी झाँकीका ज्ञान हो जाय तो फिर भगवान्से भगवानुके नामका उच्चारण होता रहे और हाथोंसे क्षणभरके लिये भी चित्त न हटे। काम। अभ्यास होनेपर ऐसा होना सर्वथा सम्भव है— मनमें यह विश्वास होना चाहिये कि नाम भगवान बस, 'मुख नामकी ओट लई है।' विश्वास होगा तो ही हैं। भगवान् जब मेरी जिह्वापर आ गये तो इस नामोच्चारणमात्रसे ही कल्याण हो जायगा। भगवानुके सारे दिव्य गुण मेरे भीतर आ गये। भगवानुके 'शिव'

आवरणचित्र-परिचय गंगाधर भगवान् शंकर पूर्वकालको बात है, महाराज सगर नामके चक्रवर्ती परिक्रमा की और वे घोड़ेको ले आये। सगरने उस यज्ञपशुके सम्राट् थे। उन्होंने अपने गुरु और्वके उपदेशानुसार द्वारा यज्ञकी शेष क्रिया समाप्त की और अंशुमानुको

सर्वशक्तिमान् भगवान्की आराधनाके उद्देश्यसे अश्वमेधका राज्यभार सौंपकर स्वयं विषयोंसे नि:स्पृह हो गये।

घोड़ा छोड़ा, परंतु इन्द्रने उसे चुराकर पातालस्थित कपिलमुनिके आश्रममें ले जाकर बाँध दिया। महाराज सगरकी दो रानियाँ थीं—सुमति और केशिनी। महारानी सुमितसे उत्पन्न सगरके साठ हजार पुत्रोंने अश्वमेध-यज्ञके अश्वका अन्वेषण करते हुए सारी

पृथ्वी खोद डाली। खोदते-खोदते उन्हें पूर्व और उत्तरके कोनेपर कपिलम्निके पास अपना यज्ञका घोडा दिखायी

दिया। घोडेको देखकर वे साठ हजार राजकुमार शस्त्र उठाकर यह कहते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े कि 'यही हमारे घोडेको चुरानेवाला चोर है। देखो तो सही, इसने इस समय कैसे आँखें मूँद रखी हैं।' उसी समय

कपिलमुनिने अपनी आँखें खोलीं, जिससे वे उद्दण्ड सगरपुत्र क्षण-भरमें ही सब-के-सब जलकर खाक हो गये। सगरकी दूसरी पत्नीका नाम था केशिनी। उसके गर्भसे उन्हें असमंजस नामका पुत्र प्राप्त हुआ था। असमंजसके

पुत्रका नाम था अंशुमान्। वे अपने दादा सगरकी आज्ञाओंके पालन तथा उन्हींकी सेवामें लगे रहते थे। उनकी आज्ञासे अंशुमान् घोडेको ढूँढनेके लिये निकले। वे अपने चाचाओंके द्वारा खोदे हुए समुद्रके किनारे-किनारे चलकर भगवान्

कपिलमुनिके आश्रममें पहुँचे और वहाँ बँधे अपने यज्ञीय अश्व और चाचाओंके शरीरकी भस्मको उन्होंने देखा।

कपिल मुनिको देख अंशुमान्ने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और एकाग्र मनसे उनकी स्तुति करने लगे।

अंशुमान्की स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् कपिलने कहा—'बेटा! यह घोडा तुम्हारे पितामहका यज्ञपश् है। इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे जले हुए चाचाओंका उद्धार

केवल गंगाजलसे होगा और कोई उपाय नहीं है।'

अंशुमान्ने गंगाजीको लानेकी कामनासे बहुत वर्षींतक घोर तपस्या की, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली; समय

आनेपर उनकी मृत्यु हो गयी। अंशुमानुके पुत्र दिलीपने भी वैसी ही तपस्या की, परंतु वे भी असफल ही रहे; समयपर उनकी भी मृत्यु हो गयी। दिलीपके पुत्र थे भगीरथ; उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की। उनकी तपस्यासे

प्रसन्न होकर गंगाजीने उन्हें दर्शन दिया और वर मॉॅंगनेको कहा। उनके ऐसा कहनेपर राजर्षि भगीरथने बडी विनम्रतासे अपना अभिप्राय प्रकट किया कि 'आप मर्त्यलोकमें चलिये।'

गंगाजीने कहा—'भगीरथ! जिस समय मैं स्वर्गसे भूतलपर गिरूँ, उस समय मेरे वेगको कोई धारण करनेवाला होना चाहिये। ऐसा न होनेपर मैं पृथ्वीको फोडकर रसातलमें चली जाऊँगी।' भगीरथने कहा—'माता! समस्त प्राणियोंके आत्मा

रुद्रदेव आपके वेगको धारण कर लेंगे; क्योंकि जैसे साड़ी सूतोंमें ओत-प्रोत है, वैसे ही यह सारा विश्व भगवान् रुद्रमें ओत-प्रोत है।' गंगाजीसे इस प्रकार कहकर राजा भगीरथने तपस्याके द्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न किया। भगवान्

शंकर तो सम्पूर्ण विश्वके हितैषी हैं, राजाकी बात उन्होंने स्वीकार कर ली। फिर सावधान होकर भगवान् शंकरने गंगाजीको अपने सिरपर धारण किया, इससे उनका एक नाम 'गंगाधर' भी हो गया।

इसके बाद राजर्षि भगीरथ त्रिभुवनपावनी गंगाजीको वहाँ ले गये, जहाँ उनके पितरोंके शरीर राखके ढेर बने पड़े थे। उस राखकी ढेरसे गंगाजीके पावन जलका स्पर्श अंश्वातावारों। क्रान्निकारों अर्थे संख्या २] गंगा-गौरव गंगा-गौरव विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरिशरःस्थिता। संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः॥ गङ्गाया महिमा ब्रह्मन् वक्तुं वर्षशतैरपि। न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितै:॥ अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भृतम् । यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि ॥ गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥ सकृदप्युच्चरेद् यस्तु [श्रीसनकजी देवर्षि नारदसे कहते हैं—] भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे प्रकट होकर भगवान् शिवके मस्तकपर विराजमान होनेवाली भगवती गंगा मुनियों और देवताओंके द्वारा भी भलीभाँति सेवा करनेयोग्य हैं, फिर साधारण मनुष्योंके लिये तो बात ही क्या है ? ××× हे ब्रह्मन्! दूसरी बातें बहुत कहनेसे क्या लाभ, साक्षात् भगवान् विष्णु भी सैकड़ों वर्षोंमें गंगाजीकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते। अहो! माया सारे जगत्को मोहमें डाले हुए है, यह कितनी अद्भुत बात है? क्योंकि गंगा और उसके नामके रहते हुए भी लोग नरकमें जाते हैं! ××× जो एक बार भी 'गंगा'—इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकको जाता है। [नारदपुराण] श्रीगंगाजीके स्मरणका फल गङ्गामुद्दिश्य गच्छन्तं पथि भाग्यादुपस्थितम्। आतिथ्यं कुरुते यस्तु तस्य पुण्यार्धकं स्मृतम्॥ यत्संस्मृतिः सपदि कुन्तति दुष्कृतौघं पापावलीं जयति योजनलक्षतोऽपि। प्रणमेच्चापि तं यस्तु विनयेनाभिभाषते। सोऽपि पापात्प्रमुच्येत सत्यं सत्यं न संशयः॥ यन्नाम नाम जगदुच्चरितं पुनाति दिष्ट्या हि सा पथि दुशोर्भविताद्य गङ्गा॥ यस्तु मोहात्तिरस्कुर्यात्स पापात्मा तु नारद। पच्यते नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ जिनकी स्मृति पापराशिका तत्काल नाश कर देती है, जो लाख योजन दूरसे भी पापोंके समूहको परास्त जो आसन्न-मृत्यु मनुष्य गंगा-यात्रा करता है, उसे करती है, जिनका नाम उच्चारण किये जानेपर सम्पूर्ण देखकर यमदूत भयाक्रान्त हो दूर चले जाते हैं। गंगाको जगतुको पवित्र कर देता है, वे गंगाजी आज सौभाग्यवश उद्देश्य करके जानेवाले मनुष्यको भाग्यवश मार्गमें पाकर जो मनुष्य उसका आतिथ्य करता है, उसे [गंगाप्राप्तिका] मेरे दुष्टिपथमें आयेंगी। [पद्मप्राण] आधा पुण्य मिल जाता है—ऐसा कहा गया है। साथ मुमुक्षुर्यत्र कुत्रापि यदि गङ्गामनुस्मरेत्। ही जो मनुष्य उसे (गंगार्थीको) प्रणाम करता है और तदा तन्मुक्तये गङ्गा सन्निधौ वसते स्वयम्॥ उससे विनम्र भावसे बातचीत करता है, वह भी पापमुक्त स्वर्गापवर्गदा पुंसां प्रत्यक्षा प्रकृतिः स्वयम्। हो जाता है, यह सत्य है, सत्य है, इसमें कोई सन्देह यस्तां नैव स्मरेत्तस्य विफलं जीवनं स्मृतम्॥ यदि मोक्षकी इच्छा करनेवाला मनुष्य जहाँ कहीं नहीं है। जो पापात्मा मनुष्य अज्ञानवश उसका अनादर भी गंगाका स्मरण कर ले तो गंगा उसकी मुक्तिके लिये करता है, वह चौदह इन्द्रोंके स्थितिकालतक (कल्पपर्यन्त) स्वयं उसकी सन्निधमें निवास करती हैं। साक्षात परा घोर नरकमें दु:ख भोगता है। [महाभागवत] श्रीगंगाजीके दर्शनका फल प्रकृति गंगा स्वयं प्रकट होकर मनुष्योंको स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। जो उनका स्मरण नहीं करता है, भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात्। उसका जीवन व्यर्थ कहा गया है।[**महाभागवत**] गङ्गाया दर्शनात् तद्वत् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ गंगाके उद्देश्यसे यात्रा करनेका फल जैसे गरुड़को देखते ही सारे सर्प विषहीन हो जाते हैं, वैसे ही गंगाजीके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे म्मुर्ष्जाह्नवीयात्रां कुरुते यस्तु मानवः। तं दुष्ट्वा दुरतो यान्ति यमदुता भयार्दिताः॥ छुटकारा पा जाता है। [महाभारत]

जात्यन्धैरिह तुल्यास्ते मृतैः पङ्गभिरेव च। विनय और सदाचारसे हीन अमंगलकारी नीच

स्पर्शनादृशीनाच्चापि निर्वाणफलदायिनी।।

समर्था ये न पश्यन्ति गङ्गां पुण्यजलां शिवाम्॥

कल्याणमयी गंगाका दर्शन नहीं करते, वे जन्मान्धों,

पंगुओं और मुर्दोंके समान हैं। [महाभारत]

जो सामर्थ्य होते हुए भी पवित्र जलवाली

श्रीगंगाजीके स्पर्शका फल सेयं सुरधुनी पुण्या महापातकनाशिनी। [श्रीमहादेवजी कहते हैं—हे नारद!] ये पुण्यमयी गंगा अपना दर्शन करने तथा अपने जलका स्पर्श करने-मात्रसे प्राणियोंके महापातकका नाश कर देती हैं तथा उन्हें मोक्षफल प्रदान करती हैं। **[महाभागवत**]

श्रीगंगाजीके तटपर निवासका फल यो वत्स्यति द्रक्ष्यति वापि मर्त्य-स्तस्मै प्रयच्छन्ति सुखानि देवाः। तद्भाविताः स्पर्शनदर्शनेन

इष्टां गतिं तस्य सुरा दिशन्ति॥ जो मनुष्य गंगाजीके तटपर निवास और उनका दर्शन करता है, उसे सब देवता सुख देते हैं। जो गंगाजीके स्पर्श और दर्शनसे पवित्र हो गये हैं, उन्हें गंगाजीसे ही महत्त्वको प्राप्त हुए देवता मनोवांछित गति

श्रीगंगाजीके सेवनका फल पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः। पश्चाद् गङ्गां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम्।। जो मनुष्य जीवनकी पहली अवस्थामें पापकर्म करके भी बादमें गंगाजीका सेवन करने लगते हैं, वे भी उत्तम गतिको ही प्राप्त होते हैं। [महाभारत]

प्रदान करते हैं। [महाभारत]

देवै: सेन्द्रैश्च को गङ्गां नोपसेवेत मानव:॥ भृत, वर्तमान और भविष्यके ज्ञाता महर्षि तथा इन्द्र आदि देवता भी जिनकी उपासना करते हैं, उन

भूतभव्यभविष्यज्ञैर्महर्षिभिरुपस्थिताम्

गंगाजीका सेवन कौन मनुष्य नहीं करेगा ? [महाभारत] श्रीगंगाजीके शरण-ग्रहणका फल विनयाचारहीनाश्च अशिवाश्च नराधमाः।

ते भवन्ति शिवा विप्र ये वै गङ्गामुपाश्रिताः॥

गङ्गाजलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तुं गुणाख्यापरिमाणमत्र॥ मेरुके सुवर्णकी, सब प्रकारके रत्नोंकी, वहाँके प्रस्तर और जलके एक-एक कणकी गणना हो सकती

जाते हैं। [महाभारत]

मनुष्य भी गंगाजीकी शरणमें जानेपर कल्याणस्वरूप हो

गंगाजलकी महिमा

मेरोः सुवर्णस्य च सर्वरतैः संख्योपलानामुदकस्य वापि।

िभाग ९०

है, परंतु गंगाजलके गुणोंका परिमाण बतानेकी शक्ति किसीमें नहीं है। [नारदपुराण] गंगाजलके पानका फल गण्डुषमात्रपाने तु अश्वमेधफलं लभेत्। स्वच्छन्दं यः पिबेदम्भस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥

केवल एक कुल्लीभर गंगाजलके पान करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो स्वच्छन्द गंगाजलका पान करता है, मुक्ति उसके हाथोंमें स्थित रहती है। [बृहन्नारदीयपुराण] गंगास्नानका फल गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शते स्थित:।

सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किम् गङ्गाभिषेकवान्॥ [श्रीसनकजी देवर्षि नारदजीसे कहते हैं--] जो गंगासे सौ योजन दूर खडा होकर भी 'गंगा-गंगा' का उच्चारण करता है, वह भी सब पापोंसे मुक्त हो जाता

है; फिर जो गंगामें स्नान करता है, उसके लिये तो

कहना ही क्या है? [नारदपुराण]

अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रवि:। तथापहत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलोक्षितः॥ जैसे सूर्य उदयकालमें घने अन्धकारको विदीर्ण

करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार गंगाजलमें स्नान

करनेवाला पुरुष अपने पापोंको नष्ट करके सुशोभित होता है। [महाभारत] स्वायम्भुवं यथा स्थानं सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते।

स्नातानां सरितां श्रेष्ठा गङ्गा तद्वदिहोच्यते॥

जैसे ब्रह्मलोक सब लोकोंमें श्रेष्ठ बताया जाता है. वैसे ही स्नान करनेवाले पुरुषोंके लिये गंगाजी ही सब निदयोंमें श्रेष्ठ कही गयी हैं। [महाभारत]

ज्ञानकी दुर्लभता और उसकी प्राप्तिका उपाय संख्या २] ज्ञानकी दुर्लभता और उसकी प्राप्तिका उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) किसी श्रद्धाल पुरुषके सामने भी वास्तविक दुष्टिसे स्वयं प्राप्तिके लिये उत्सुक हूँ तो ऐसा कहनेसे उनके महापुरुषोंके द्वारा यह कहना नहीं बन पड़ता कि 'हमको अनुयायीगण या तो यह समझ बैठते हैं कि जब इनको ही ज्ञान प्राप्त है'; क्योंकि इन शब्दोंसे ज्ञानमें दोष आता है। प्राप्ति न हुई तो हमको क्योंकर होगी या यों समझ लेते हैं वास्तवमें पूर्ण श्रद्धालुके लिये तो महापुरुषसे ऐसा प्रश्न ही कि इतने अंशमें सम्माननीय पुरुषके शब्द या तो अयथार्थ नहीं बनता कि 'आप ज्ञानी हैं या नहीं ?' जहाँ ऐसा प्रश्न हैं या असली स्थितिको छिपानेवाले हैं और इस प्रकारके किया जाता है, वहाँ श्रद्धामें त्रुटि ही समझनी चाहिये और दोषारोपणसे उन लोगोंकी श्रद्धामें कुछ कमी होना सम्भव है। अतएव इस विषयमें मौन ही रहना चाहिये। इन सब महापुरुषसे इस प्रकारका प्रश्न करनेमें प्रश्नकर्ताकी कुछ हानि ही होती है। यदि महापुरुष यों कह दे कि 'मैं ज्ञानी बातोंपर विचार करनेसे यही सिद्ध होता है कि महापुरुषके नहीं हूँ 'तो भी श्रद्धा घट जाती है और यदि वह यह कह लिये ज्ञानी अथवा अज्ञानी किसी भी शब्दका प्रयोग उसके दे कि 'मैं ज्ञानी हूँ' तो भी उसके मुँहसे ऐसे शब्द सुनकर अपने मुखसे नहीं बनता। इतना होनेपर भी महापुरुष यदि अज्ञानी साधकको समझानेके लिये उसे ज्ञानोपदेश करते श्रद्धा कम हो जाती है। वास्तवमें तो 'मैं अज्ञानी हूँ या ज्ञानी'—इन दोनोंमेंसे कोई-सी बात कहना भी महापुरुषके समय उसीकी भावनाके अनुसार अपनेमें ज्ञानीकी कल्पना लिये नहीं बन पड़ता, यदि वह अपनेको अज्ञानी कहे तो करके अपनेको ज्ञानी शब्दसे सम्बोधित कर दे तो भी कोई मिथ्यापनका दोष आता है और यदि ज्ञानी कहे तो नानात्वका। हानि नहीं, वास्तवमें उसका यों कहना भी उस साधककी इसलिये वह यह भी नहीं कहता कि 'मैं ब्रह्मको जानता दृष्टिमें ही है और ऐसा कहना भी उसी साधकके सामने हूँ' और यह भी नहीं कहता कि 'मैं नहीं जानता।' वह ब्रह्मको सम्भव है, जो पूर्ण श्रद्धालु और परम विश्वासी हो, जो जानता है—ऐसा भी उससे कहना नहीं बनता, परंतु वह महापुरुषके शब्दोंको सुनते-सुनते ही स्वयं वैसा बनता नहीं जानता हो—ऐसी बात भी नहीं है। श्रुति कहती है— जाय और जिस स्थितिका वर्णन महापुरुष करते हों, उसी नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च। स्थितिमें स्थित हो जाय। इसपर ऐसा कहा जा सकता है कि श्रद्धा और विश्वास तो पूर्ण है, परंतु वैसी स्थिति नहीं यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥ होती। इसके लिये वह बिचारा श्रद्धालु साधक क्या करे? यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। यह ठीक है, परंतु साधकके लिये इतना तो परमावश्यक है अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥ कि वह श्रवणके अनुसार ही एक ब्रह्ममें विश्वासी होकर (केन० २।२-३) इसीलिये इसका नाम अनिर्वचनीय स्थिति है, इसीलिये उसीकी प्राप्तिके लिये पूरी तरहसे तत्पर हो जाय, जबतक वेदमें दोनों प्रकारके शब्द आते हैं और इसीलिये महापुरुष उसे प्राप्ति न हो तबतक वह उसके लिये परम व्याकुल रहे। जैसे किसी मनुष्यको एक जानकारके द्वारा उसके यह नहीं कहते कि 'मुझे प्राप्ति हो गयी।' इस सम्बन्धमें वे स्वयं अपनी ओरसे कुछ भी न कहकर वेद और शास्त्रोंकी घरमें गड़ा हुआ धन मालूम हो जानेपर वह उसे खोदकर तरफ संकेत कर देते हैं, परंतु ऐसा भी नहीं कहते कि 'मुझे निकालनेके लिये व्याकुल होता है, यदि उस समय उसके प्राप्ति नहीं हुई।' ऐसा कहना तो उत्तम आचरण करनेवाले पास बाहरके आदमी बैठे हुए हों तो वह सच्चे मनसे यही आचार्य या नेता पुरुषोंके लिये भी योग्य नहीं; क्योंकि चाहता है कि कब ये लोग हटें, कब मैं अकेला रहूँ और इससे उनके अनुयायियोंका ब्रह्मकी प्राप्तिको अत्यन्त कठिन कब उस गड़े हुए धनको निकालकर हस्तगत कर सकूँ। मानकर निराश होना सम्भव है। जैसे यदि आज कोई परम इसी प्रकार जो साधक यह समझता है कि मेरे साधनमें सम्माननीय पुरुष कह दे कि मुझे प्राप्ति नहीं हुई है, मैं तो बाधा देनेवाले आसक्ति और अज्ञान आदि दोष कब दूर हों

िभाग ९० और कब मैं अपने परम-धन परमात्माको प्राप्त करूँ। स्वयं उसे निभा लेते हैं। साधकको आवश्यकता है उस जितनी ही देर होती है, उतनी ही उनकी व्याकुलता और परमात्माके परायण होनेकी । श्रीपरमात्माकी शरण लेनेमात्रसे उत्कण्ठा उत्तरोत्तर प्रबल होती चली जाती है और वह उस ही सब कुछ हो सकता है। भगवान्ने कहा है— विलम्बको सहन नहीं कर सकता। यदि इस प्रकारके साधकके अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। सामने महापुरुष स्पष्ट शब्दोंमें भी अपनेको ज्ञानी स्वीकार तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ कर ले तो भी कोई हानि नहीं, परंतु इससे नीची श्रेणीके (गीता ९।२२) साधक और अपूर्ण प्रेमियोंके सामने यों कहनेसे उस अर्थात् जो अनन्य-भावसे मेरे में स्थित हुए भक्तजन महापुरुषकी तो कोई हानि नहीं होती, परंतु अनिधकारी मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम-भावसे होनेके कारण उस सुननेवालेके पारमार्थिक विषयमें हानि भजते हैं, उन नित्य एकीभावसे मुझमें स्थित पुरुषोंका होना सम्भव है। यदि यह बात सभीको स्पष्ट कहनेकी योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। संसारमें भी यही बात होती तो शास्त्रोंमें इसे परम गोपनीय न कहा जाता और देखनेमें आती है कि यदि कोई किसीके परायण हो जाता केवल अधिकारीको ही कहनी चाहिये, ऐसी विधि न होती। है तो उसकी सारी सँभाल वही रखता है, जैसे बच्चा कोई यह कहे कि महापुरुषकी परीक्षा कैसे की जाय जबतक अपनी माताके परायण रहता है, तबतक उसकी और यदि बिना परीक्षाके ही किसी अयोग्य व्यक्तिको गुरु रक्षाका और सब प्रकारकी सँभालका भार माता स्वयं ही अथवा उपदेशक मान लिया जाय तो शास्त्रोंमें उससे उलटी अपने ऊपर लिये रहती है। जबतक बालक बड़ा होकर हानि होना कहा गया है। यह प्रश्न और शास्त्रोंका कथन स्वतन्त्र नहीं होता, तबतक माता-पिताके प्रति उसकी तो उचित ही है, परंतु जिसका संग करनेसे परमात्मामें, उस परायणता रहती है और जबतक परायणता रहती है, तबतक माता-पितापर ही उसका सारा भार है। इसी प्रकार केवल महापुरुषमें और शास्त्रोंमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, उसे गुरु या उपदेशक माननेमें कोई हानि नहीं। यदि कोई पूर्ण न भी एक परमात्माकी शरण लेनेसे ही सारे काम सिद्ध हो सकते हो तो जहाँतक उसका गम्य है, वहाँतक तो वह पहुँचा ही हैं। परंतु शरण लेनेका काम साधकका है। शरण होनेके सकता है, [इस दृष्टिसे महापुरुषकी संगति करनेवाले बाद तो प्रभु स्वयं उसका सारा भार सँभाल लेते हैं। अतएव साधकोंका संग भी उत्तम और लाभदायक है] आगे परमात्मा कल्याणके प्रत्येक साधकको परमात्माकी शरण लेनी चाहिये। सरस्वती-वन्दना (डॉ० श्रीगार्गीशरणजी मिश्र 'मराल') माँ शारदे शत शत नमन, माँ शारदे शत शत नमन। चरण कमलों में समर्पित भ्रमर सा यह विकल मन॥ एक कर में वेद चारों, श्वेत हंस तेरा, वाहन श्वेत आसन सित कमल। में माला सुघर। पाओ साधना श्वेत साडी से ढका तन, श्वेत ही है मुख कमल॥ पाओ र्डश भक्ति दे रहे उपदेश उज्ज्वल हो मनुज का आचरण। ले धरती दो करों में ललित कला कला का वरदान दे माँ. ज्ञान दे माँ, भक्ति दे माँ। प्रतीक वीणा सज रही। स्वरों की ज्यों मधुर लहरी आचरण हो श्रृभ्र ऐसी साधना की शक्ति दे माँ॥ रही॥ बज बनकर

भगवान् कपिलका प्रादुर्भाव संख्या २] भगवान् कपिलका प्रादुर्भाव (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) श्रीदेवहूति स्वायम्भुव मनुकी पुत्री, प्रियव्रत एवं सर्वभोग-सामग्रीसम्पन्न विमान बनाया। उसके भीतर विहार, उत्तानपादको बहन थी। जब वह विवाहयोग्य हुई तब मनु विश्राम, शयन आदिके पृथक्-पृथक् यथायोग्य सब स्थान कन्या प्रदान करनेके लिये महर्षि कर्दमके आश्रममें गये। थे। ऐसे अद्भृत स्थानको देखकर भी देवहृतिको चुपचाप महर्षि कर्दमने अपनी महती तपस्यासे भगवान्का प्रत्यक्ष बैठी देख सर्वज्ञकल्प ऋषिने कहा—'इस सरोवरमें स्नान कर लिया था और भगवान्ने उनके यहाँ पुत्र-रूपसे प्रकट करके इस विमानपर आओ।' पतिका वचन मानकर जैसे ही वह मलिन वस्त्र और जटिल केशोंको धारण किये होना भी स्वीकार किया था। मनुकी प्रार्थनापर जब महर्षिने विवाह करना स्वीकार कर लिया, तब मनु एवं शतरूपाने पंकिल देहसे उस सरोवरमें प्रविष्ट हुई, वैसे ही सरोवरके दहेजके साथ भूषण, वसन, अलंकारादिसे युक्त विधिविधान-भीतर दिव्य भवनमें उसे कमलकी-सी गन्धवाली सहस्रों पूर्वक महर्षिको कन्यादान कर दिया और स्वयं मुनिके किशोरी कन्याएँ दिखायी पड़ीं। उन्होंने देवहूतिको महार्ह आज्ञानुसार विदा होकर अपने पुरको चले गये। पिता-जलसे नहलाकर, निर्मल, नूतन, दिव्य वस्त्र पहनाये, माताके चले जानेपर देवहृति पतिके अभिप्रायको समझकर प्रकाशमय बहुमूल्य भूषण पहनाये और सर्वगुणसम्पन्न, बड़े प्रेमसे उनकी परिचर्या करने लगी। अपनी पवित्रता, अमृतमय अन्नपानादि प्रदान किये। देवहृतिने दिव्य भूषण, वसन-अलंकारादिसे भूषित, सुसज्जित, अलंकृत होकर जितेन्द्रियता, शुश्रुषा, सौहार्दपूर्वक मिष्ट भाषण, काम-दम्भ-द्वेष-लोभ-पाप-अहंकार आदि दुर्गुणोंसे सदा अपना मुख दर्पणमें देखा और जैसे ही अपने पतिका स्मरण पराङ्मुखता आदि गुणोंसे देवहृतिने परमतेजस्वी महर्षिको किया, वैसे ही वह उन स्त्रियोंके साथ ही ऋषिके सन्निधानमें प्रसन्न कर लिया। विवाहके पश्चात् महर्षि भजन, ध्यान, पहुँच गयी। पतिके सामने सहस्रों स्त्रियोंसे युक्त अपने समाधिमें लग गये थे। बहुत कालकी सेवा तथा व्रतचर्यासे आपको देखकर उसे उनकी योगगतिपर अत्यन्त आश्चर्य कर्शिता, दुर्बला पत्नीको देखकर एक दिन कृपापूर्वक गद्गद हुआ। अष्ट लोकपालोंके विहार-स्थान, कुलाचलेन्द्रके कण्ठसे महर्षिने कहा—'हे मानवि! तुम्हारी शुश्रूषा और शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन एवं गंगाप्रवाहके शब्दसे युक्त भक्तिसे मैं प्रसन्न हूँ, तुमने मेरी सेवामें तत्पर होकर अतिप्रिय द्रोणियोंमें तथा वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्र, मानस, देहकी भी परवाह नहीं की। तप, समाधि एवं विद्यामें चैत्ररथ आदि वनोंमें कामगामी विमानसे दूसरे वैमानिकोंको चित्तकी एकाग्रता तथा भगवत्प्रसादसे जो भी दिव्य भोग अतिलंघन करके उन्होंने बहुत कालपर्यन्त विहरण किया। मुझे प्राप्त हैं, वे सब मेरी सेवासे तुम्हारे लिये भी प्राप्त हों। श्रीहरिके प्रार्थना-प्रभावसे महायोगी कर्दमके लिये कुछ मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ। मेरी सेवासे प्राप्त दुष्कर और दुष्प्राप्य नहीं था। वे पत्नीको आश्चर्यपूर्ण अभय एवं अशोक लोकोंको देखो। अब तुम सिद्ध हो सम्पूर्ण भूगोल दिखाकर अपने आश्रमको लौट आये और गयी हो, राजाओंके लिये भी अप्राप्य निज धर्मसे प्राप्त सैकड़ों वर्षोंतक दिव्यभोगोंमें रमण करते रहे। इसके उपरान्त भोगोंको भी भोगो। देवहूतिके गर्भसे एक ही दिनमें बहुत-सी कमललोचना यह सुनकर और अखिल योगविद्याओंमें विचक्षण कन्याएँ उत्पन्न हुईं। महर्षिको देखकर देवहूति चिन्तासे मुक्त हो गयी और नम्रता एक दिन अकस्मात् ऋषिको प्रव्रज्या करने (संन्यास तथा प्रेमसे बोली—'आपका अमोघ योगमाया-वैभव जान लेने) जाते देख देवहूतिने अत्यन्त खिन्न होकर आँसुओंको रही हूँ, जिस तरह मैं आपकी समुचित सेवा कर सकूँ, वैसी रोककर कहा—'भगवन्! यद्यपि आपने मुझपर बड़ी कृपा मुझे आज्ञा करें।' प्रेयसीके अभिप्रायको जानकर कर्दमजीने की है तथापि इन दुहिताओं के लिये अभी योग्य वर ढूँढ़ना योगबलसे उसी समय एक कामगामी दिव्य, अतिसुन्दर, है, साथ ही आपके प्रव्रजित होनेपर मुझे नि:शोक करनेके

******************* लिये आपसे कोई पुत्र भी होना आवश्यक है, अत: मुझ आश्वासन देकर कुमारों एवं नारदके साथ हंसारूढ होकर प्रपन्नाको अभयदान दीजिये। प्रभो! इन्द्रियोंके विलाससे ब्रह्माजी अपने धामको चले गये। परमात्म-विस्मृतिमें बहुत काल बीत गया। यद्यपि विषयोंमें कर्दमने मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, आसक्त होकर आपके माहात्म्यको न जानकर ही मैंने भृगु, वसिष्ठ, अथर्वा नामक ऋषियोंको क्रमश: कला, आपका संग किया तथापि आपके संगसे मुझे अवश्य अभय श्रद्धा, हिवर्भू, गित, क्रिया, अनस्या, ख्याति, अरुन्धती, मिलना चाहिये। असत् पुरुषोंका संग संसारका हेत् होता शान्ति नामकी अपनी कन्याओंको प्रदान किया। ऋषि लोग है, वही संग सत्पुरुषोंके साथ किया हुआ नि:संगताका अपनी-अपनी पत्नियोंको लेकर अपने-अपने आश्रमोंमें हेतु बन जाता है। जिसके कर्म, धर्म एवं वैराग्य भगवत्सेवामें गये। इसके उपरान्त देवहृतिके गर्भसे प्रकट भगवान् कपिलके पर्यवसित न हों, वह जीता हुआ भी मृत है। प्रभो! में सन्निधान—एकान्तमें जाकर कर्दमजी कहने लगे—'प्रभो! भगवानुकी मायासे वंचित होकर विमुक्तिदाता आपको पाकर यतिलोग शुन्यागारोंमें बहुजन्मपक्व योगसमाधिसे जिस भी बन्धनसे न छूट सकी।' इस तरहके वचनको सुनकर पदको देखनेका प्रयत्न करते हैं, वही आप हम ग्रामीणोंके और भगवान्के वचनोंका स्मरणकर दयालु मुनिने कहा— गृहमें प्रकट हुए हैं। प्रभो! आप भक्तोंका मान बढ़ाते हैं। 'राजपुत्रि! तुम खिन्न मत हो। भगवान् अक्षर परमात्मा यद्यपि आप अरूप हैं, फिर भी आपके भक्त जैसा-जैसा शीघ्र ही तुम्हारे गर्भमें आयेंगे। तुमने इन्द्रिय-संयम, नियम, चाहते हैं, वैसे-वैसे ही रूपमें प्रकट होते हैं-तप, दान आदिसे व्रत धारण किया है, अब श्रद्धासे ईश्वरका तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव। भजन करो, प्रभु तुम्हारी आराधनासे मेरे यशका विस्तार करते यानि यानि च रोचन्ते स्वजना नामरूपिणः॥ (श्रीमद्भा० ३।२४।३१)

तप, दान आदिसे व्रत धारण किया है, अब श्रद्धासे ईश्वरका भजन करो, प्रभु तुम्हारी आराधनासे मेरे यशका विस्तार करते हुए तुम्हारे पुत्ररूपसे प्रकट होकर हृदयग्रन्थिका भेदन करेंगे।' बड़े गौरवसे पितके वचन सुनकर देवहूित श्रद्धासे कूटस्थ परम पुरुषका अनुसन्धान करने लगी। बहुत दिनोंके बाद कर्दमके तेजसे भगवान् देवहूितके गर्भमें आये। उस समय देवता आकाशमें विविध वादित्र बजाने लगे, गन्धर्व गुण-गान करने लगे एवं अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, सभी दिशाएँ, सरोवर एवं सरिताएँ तथा सज्जनोंके मन प्रसन्न हो उठे। उस समय मरीच्यादि ऋषियोंको संग लेकर ब्रह्माजी कर्दममुनिके आश्रममें आये और प्रसन्न होकर कर्दमसे कहा—'तात! सृष्टिमें प्रवृत्त

विचरण करते हुए तुम्हारी कीर्ति बढ़ायेंगे।' इस तरह दोनोंको

संन्यास करके, दुर्जय मृत्युको जीतकर, अमृतत्व प्राप्त करनेके लिये मेरा भजन करो। मुझ सर्वभूत-गुहाशायी, स्वयंज्योति आत्माको स्वस्वरूपसे आत्मामें ही प्रत्यक्ष करके अभय होकर तुमने हमारी आज्ञाका निश्छल भावसे जो पालन हो जाओ। माताके लिये मैं सर्वकर्मशमनी आध्यात्मविद्या किया, इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब इन कन्याओंको दुँगा, जिससे वह भी निर्भय पद प्राप्त कर सकेगी।' इस मुख्य-मुख्य ऋषियोंको प्रदान करो। इनसे सृष्टिका पूर्ण तरह कपिलसे अनुज्ञात होकर, उनकी प्रदक्षिणा करके विस्तार होगा। भगवान् परमात्मा कपिलरूपसे तुम्हारे गृहमें प्रजापित कर्दम वनमें चले गये। नि:सहाय एवं नि:संग होकर अनिम्न और अनिकेत हो पृथ्वीपर विचरने लगे। अवतीर्ण होनेवाले हैं। वे ज्ञान, विज्ञान, योगसे कर्मग्रन्थियोंका उद्धरण करेंगे। हे मानवि! भगवान् तेरे गर्भमें आ गये हैं, एकान्त भक्तिसे सदसत्से परे परब्रह्ममें मन जोड़कर निरहंकार, वे अविद्या-ग्रन्थिका छेदन करके सिद्धगणोंके ईश्वर, निर्भय, निर्द्वन्द्व, समदृक्, स्वदृक्, प्रत्यक्, प्रशान्तधी हो गये। प्रत्यगभिन्न भगवान्में विश्व और विश्वमें प्रत्यगभिन्न सांख्याचार्योंसे सुसम्मत कपिल नामसे प्रसिद्ध होकर पृथ्वीपर

भगवान्को देखते हुए भागवती गतिको प्राप्त हो गये।

सर्वाराध्य सर्वेश्वर्यपूर्ण प्रभो! हम आपकी शरणमें

भगवान्ने कहा—'मुने! मैं पूर्वकथनानुसार आपके

हैं। अब मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ कि परिव्राट् (संन्यासी)

यहाँ अवतीर्ण हुआ हूँ। मुमुक्षुओंके लिये बहुत कालसे

लुप्त तत्त्व-प्रसंख्यानका वर्णन करूँगा। आप जाओ, कर्म-

होकर, आपमें चित्त लगाकर, विशोक हो जाऊँ।'

[भाग ९०

संसारमें मेरा कौन? संख्या २] संसारमें मेरा कौन? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) 'संसारमें मेरा कौन है' यह प्रश्न है, तो भाई! इसका नहीं—'अपने प्रति उनका मेरा भाव छूट जाय।' तो क्या असली उत्तर यह है कि मेरा भगवान्के सिवाय कोई नहीं, होगा, भगवान् उसे मेरा कह देंगे और जहाँ भगवान्ने ये दोनों चीजें—मेरा कोई नहीं और मैं किसीका नहीं— मेरा कहा, काम बन गया। तुलसीदासजीने तो बड़े सहज माननेकी हैं। एक बड़ी सुन्दर बात यह है कि जबतक भावसे कहा कि महाराज! लगता क्या है? एक बार जिसको 'मेरा' कहनेवाले अधिक होते हैं, तबतक इस कह दो-एक बार कहो ना तुलसीदास! तू मेरो, एक बातमें एक बड़ी बाधा रहती है कि भगवान् उसे 'मेरा' बार कहो ना तुलसीदास मेरो, एक बार कह दो ना। राम कह दें और जबतक बहुत-सी वस्तुओं में 'मेरापन' रहता दो बार बोलते नहीं, एक बार कह दिया सो कह दिया; है, तबतक भगवान्को 'मेरा' कह दे, इसमें भी बाधा रहती तो बोले-रामजी! एक बार कह दो ना तुलसीदास है। दोनों चीजें विचारनेकी हैं। भई! हमारे इतने स्नेही मेरा-क्या बिगड़ता है आपका? हैं, क्या करें, वे सभी हमें तो अपना मानते हैं, सभी 'मेरा' पर वे मेरा कहनेमें सकुचाते हैं, जबतक मेरा मानते हैं, ये अभिमान बोलता है, मोह बोलता है। वह कहनेवाले बहुत लोगोंका दल रहता है, बहुत लोग कहते हैं—ये मेरा, ये मेरा, तबतक भगवान् कहते हैं—भई! जबतक ऐसा मानता है कि संसारमें मुझको मेरे कहनेवाले बहुत हैं, तबतक भगवान् उसको 'मेरा' कहनेमें सकचाते इनके बने रहो अब, हमारे अकेलेके तो तुम बनना चाहते हैं। है तो वह भगवान्का 'मेरा' ही, पर वह कह देगा नहीं, तुमको हम कैसे मेरा कहें ? भगवान् मेरा किसको भगवान्से कि महाराज! आप मुझको मेरा मानते हो, सो कहना चाहते हैं, ये बड़ी समझनेकी बात है कि हम तो माना, पर इतने आदमी मुझको मेरा मानते हैं, क्या जहाँ भगवानुका एकाधिपत्य अपने ऊपर स्वीकार कर उनको छोड़ दूँ आपके लिये? वह चाहे इस भाषामें न लेते हैं, एकाधिपत्य-हम भगवान्के ही मेरे और कहे, पर जीवनके आचरणसे तो वह कहता रहता है। किसीके मेरे नहीं-ये चीज जब हमारे जीवनमें आ जाती इसीलिये जिसको बहुत लोग मेरा मानते हैं, उसको है, तो भगवान् कह देंगे कि 'तुम मेरे'। भगवान् 'मेरा' कहनेमें सकुचाते हैं, यद्यपि वह है और दूसरी चीज-हम बहुत चीजोंको मेरी-मेरी कहते हैं, ये मकान मेरा, ये धन मेरा, ये पुत्र मेरा, ये भगवान्का ही; क्योंकि वह भगवान्का एकाधिपत्य अपने ऊपर स्वीकार नहीं करता, वह कहता है कि मैं बहुतोंका जमीन मेरी, ये कीर्ति मेरी, नाम मेरा, यश मेरा, न मालूम कितनी-कितनी लाखों-करोड़ों वस्तुओंमें हमारा मेरापन मेरा हूँ तो केवल भगवानुका मेरा—ये क्यों? हाँ, एकने कहा मुझसे, बड़ी अच्छी बात कही। फैला हुआ है। जबतक लाखों वस्तुओंमें मेरापन फैला कोई बहन थी, उसने कहा और मुझे अच्छी बात लगी। है, तबतक हम निश्चिन्त रूपसे भगवान्से खुलकर कैसे कह दें कि तुम ही मेरे हो? भगवान् कहेंगे भई! बात उसकी स्थिति क्या है, मुझे पता नहीं, मैं जानता नहीं। उसने कहा कि जब मुझपर विपत्ति आयी, तब मेरे मनमें तो तुम्हारी ठीक है कि तुम हमारे हो, पर तुम तो बहुतोंको यह आया कि मुझे अब 'मेरी' कौन कहेगा? मेरी कौन मेरा मान रहे हो ना! तुम्हारी ममता तो न मालूम कितनी कहेगा? उसके बाद ही ऐसी चीज घटी कि भगवान्ने जगह बिखरी पड़ी है? तो उन्हींमें तुम हमको भी मेरा 'मेरा' कह दिया, बड़ा अच्छा, बड़ा अच्छा। अगर ये मानना चाहते हो, जैसे वे तुम्हारे, वैसे एक मैं भी बन सत्य है तो इतनी अच्छी बात है कि यहाँके 'मेरे' जाऊँ! बोले भई! मोटर है, गाड़ी है, इंजन है, मशीन कहनेवाले अगर कोई भी न रहे और न ही रहने चाहिये। है, चूल्हा है, चक्की है-ऐसे भगवान् भी हमारे बन नहीं रहनेका अर्थ ये नहीं कि वे सब मर जायँ, ये अर्थ जायँ। जैसे घरमें चूल्हा-चक्की रहे, ऐसे भगवान् भी रहें

तो अच्छा है, एक भगवान् भी रह जायँ, एक चीजपर है—भ्रांति है। भगवानुके नाते सबको मेरा कहे, इसमें मेरा मेरापन और बढ़े। इस प्रकारके 'मेरापन' को भगवान आपत्ति नहीं, जैसे मैनेजर अपनी फर्मकी सारी चीजोंको

भाग ९०

गड़बड़ी नहीं है, चाहे शरीर कहें और चाहे 'मैं' कहें,

पर शरीरमें 'मैं' बना है और शरीर हम अलग कहते हैं

और मैं कहते हैं तो कोई आपत्ति नहीं, ये बात नहीं

भाषासे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। असलमें भावसे होता

आज हमने अपना ये काम किया। ये हमारी चीज है,

नौकरोंसे कहेगा कि देखो, वह चीज हमारी है, जरा ठीकसे रखना। हमारी माने अपनी और अपनी माने

मालिककी। मालिककी चीज मानकर मैनेजरके हिसाबसे

गुमाश्तेकी भाँति, सेवकके नाते हम उसका भली-भाँति

आचरण करें, कोई आपत्तिकी बात नहीं, परंतु यदि हम

स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं—भई! सीधी बात है— मेरा कहता है—'मेरा' शब्द कहनेमें कोई आपत्ति नहीं, अगर तुम चाहते हो, मुझको अपना बनाना; तो सारी ममता शब्दोंसे डरना और शब्दोंको बदल लेना, सूत्र नहीं जो है, ये केवल मेरेमें केन्द्रित हो। इस प्रकार दोनों बातें— बदलता। इससे हम बोले कि ये शरीर इस पार जायेगा और हम कहें कि हम उस पार जायँगे, इसमें कोई भी

मुझे अपना अधिकार पूरा कर लेने दो या मेरे-पर तुम पूरा अधिकार कर लो। अधूरा नहीं या तो तुम केवल मेरे बन जाओ, तुमपर मेरा पूर्णाधिकार हो जाय, तुमको

मेरा कहनेवाला मेरे सिवाय कोई रहे नहीं। मेरी चीज बन जाओ, दूसरोंकी चीज नहीं, दूसरेकी चीज तुम अगर बनने जाओगे, मेरे बननेके साथ-साथ, तो भैया! मैं नाराज

तो कोई बात नहीं और इस 'मैं' में अगर 'मैं' नहीं है है। संसारकी वस्तुएँ रहें, कोई आपत्ति नहीं, उनका हम उपयोग भी करें, उनकी सँभाल भी करें, पर करें वैसे ही जैसे मैनेजर अपने मालिककी वस्तुकी करता है, उसे मेरा-मेरा भी कहता है, आज हम अपनी दुकान गये थे,

हो जाऊँगा। नाराज होनेका अर्थ यही कि तुमको मेरा कहनेमें संकोच करूँगा और या तो तुम मेरेपर पुरा अधिकार कर लो, मुझको ही मेरा मान लो और किसी वस्तुमें मेरापन मत रखो, तुम्हारा काम हो जायगा। तो

क्या करे ? भगवान्से हम प्रार्थना करें कि जिससे हमारे ऊपरसे सबका मेरापन उठ जाय और हमारा सबसे मेरापन उठ जाय। हमारे ऊपर भगवानुका एकान्त-अनन्य

मेरापन हो जाय और हमारा भगवान्में एकान्त—अनन्य मेरापन हो जाय, तब भगवान् ये कह सकेंगे तुम मेरे और हम यह कह सकेंगे भगवान्! तुम्ही मेरे।

ये दोनों बातें भगवान्को स्वीकार्य हैं, जगत्में जहाँ मेरापन कहते हैं, जगत्में जहाँ हम अपनेको किसीका मेरा बनाते हैं-ये दोनों ही हमारे लिये खतरनाक चीज

उसको मेरा मान लेते हैं तो महाराज! एक तो होती है ये बेईमानी, दूसरा कोई हमें चीज दे सँभाल-सेवाके

लिये और हम उसके मालिक बन बैठे!

-भगवती गंगा मंगलका विस्तार करें

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन् महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।

श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु॥१॥

दरिद्राणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदां द्रुतं दूरीकुर्वन् सकृदुपगतो दृष्टिसरणिः।

अपि द्रागाविद्याद्रमदलनदीक्षागुरुरिह प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः॥२॥

[**पंडितराज जगन्नाथ कहते हैं —**] माँ! जो सम्पूर्ण पृथ्वीका महान् सौभाग्यरूप है, जो अनायास ही सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले शिवका भी परम ऐश्वर्यरूप है, जो श्रुतियोंका सर्वस्व है तथा देवताओंका मूर्तिमान् पुण्यरूप

है, वह अमृतके सौन्दर्यका साररूप तुम्हारा जल हमारे अमंगलोंको दूर करे॥ १॥ गंगे! एक बार भी दृष्टिगोचर होनेपर जो दरिद्रोंके दारिद्र्य तथा पापियोंके पापको अतिशीघ्र नष्ट कर देता है और इस लोकमें अज्ञानरूप वृक्षका सब ओरसे

निश्चिन्त हो रहो संख्या २] निश्चिन्त हो रहो (संत श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल) प्रभो! मेरे लिये 'मैं' जितना प्यारा हूँ, उससे कहीं मुखों और नेत्रोंमें उसके कैसे अपूर्वरूपका विकास हो अधिक तुम्हारे लिये 'मैं' प्यारा हूँ। फिर मैं अपने लिये रहा है। न मालूम कबसे कितने लोग इस रूपको देखते इतनी चिन्ता क्यों करता हूँ ? क्या तुमपर विश्वास नहीं चले आ रहे हैं। कितने प्रकारसे कितने लोगोंने इसे है ? क्या हृदयने तुमको भलीभाँति नहीं पहचाना ? समझनेकी चेष्टा की, परंतु किसीने इस रूपकी थाह नहीं सचमुच मैं तुमपर निर्भर तो नहीं हूँ! पतिव्रता स्त्रीका सब पायी। किसीको यह रूप कभी पुराना नहीं लगा। कितने दिन बीत गये ध्रुवने देखा, प्रह्लादने देखा, अम्बरीषने कुछ चला जाय, एक पित बच रहे, तो वह सारे अभावको हँसती हुई सह लेती है; क्योंकि उसके लिये देखा, नारद आदि ऋषियोंने देखा, फिर व्रजकी गोपियोंने पतिसे बढ़कर प्यारी-से-प्यारी चीज दूसरी कोई नहीं। देखा, ग्वाल बालकोंने देखा। अर्जुन, उद्भव, युधिष्ठिर, जो व्यभिचारिणी स्त्री सबके पास अपने हृदयकी जाँच विदुर, भीष्मने देखा, पर देखा वही एक रूप, वही कराती फिरती है, पर किसीको प्राण नहीं दे सकती, वह असीम शोभा, वही नयनोंको हरने और हृदय शीतल कहींपर वैसा आश्रय भी नहीं पाती। उसका मन किसी करनेवाली सुन्दरता! उसमें कभी कोई कमी नहीं हुई। जिसने देखा, वही पागल हो गया। उसके स्नेह-ममताके भी जगह निश्चिन्त होकर नहीं ठहर सकता। इसी तरह सभी बन्धन खुल गये। अर्थ, रूप, यौवन, यश आदि हमारा मन भी अभी एकनिष्ठ नहीं हो सका है। वह अभीतक यह निश्चय नहीं कर सका है कि अपनेको सबका मोह छूट गया! कहाँ दिया जाय? हृदयके ग्राहक तो बहुत हैं। यश, उस प्राणारामको प्राण अर्पण कर देनेपर जैसा निश्चिन्त हुआ जाता है, वैसा और किसीको अर्पण अर्थ, विद्या, स्त्री, पुत्र, संसार आदि सभी हृदय खरीदना चाहते हैं, परंतु चाहते हैं प्राय: बिना ही मूल्य! क्योंकि करनेपर नहीं होता; क्योंकि अन्य किसीमें इतना सामर्थ्य हृदयका उचित मूल्य इनमेंसे किसीके पास भी नहीं है। ही नहीं है। उसके समान तुम्हारे दु:खसे दुखी होनेवाला पूरे दाम देकर हृदय खरीदनेका सामर्थ्य किसीमें भी नहीं और कोई नहीं है। छोटे बच्चेकी चिन्ता जितनी माताको रहती है, उतनी दूसरे किसीको नहीं रहती; क्योंकि माताके दीख पडता। दु:ख तो इसी बातका है कि जो हृदयकी यथार्थ कीमत जानता है और पूरी कीमत दे सकता है, समान उसका आत्मीय दूसरा कोई नहीं है। इसी प्रकार उस हृदयसखा परमात्माके समान भी तुम्हारा परम उसको हृदय पहचानकर अपना नहीं बना सका! प्यार न करनेपर भी जो प्यार करता है, याद न करनेपर भी आत्मीय दूसरा कोई नहीं हो सकता। इसीलिये वह तुमसे जो याद आता है, उस चिरकालके सखाको-जीवन-जितना प्यार करता है, उतने प्यारकी आशा दूसरे किसीसे मरणके सहचर जीवनबन्धुको-रे अभागे मन! तू किस भी नहीं की जा सकती। सोचो, उसका तुमपर इतना सम्पत्तिके लोभसे, किसकी मायासे मुग्ध होकर भूल रहा अधिक प्रेम है, तुम उसे स्वीकार नहीं करते, तो भी वह है ? धन चाहता है ? रूप चाहता है ? प्रतिष्ठा चाहता कभी नाराज नहीं होता या कभी रूठता नहीं! तुम्हारे व्यवहारको देखकर वह केवल सजल नयनोंसे तुम्हारी है ? बतला तो सही, उसके समान धनी और कौन है ? किसका इतना ऐश्वर्य है? सभी लोकोंमें तो उसका ओर ताकता रहता है! संसारमें कितने लोग कितना पाप ऐश्वर्य छा रहा है। बता, इतना रूप और किसका है, करते हैं, कितना विरुद्धाचरण करते हैं, इसके लिये क्या जो स्वर्गसे लेकर मृत्युलोकतक समाता नहीं। आकाश, वह उनको आश्रय नहीं देता ? क्या उनके लिये वह सूर्यका चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र सभीमें उसके रूपका बाजार प्रकाश, वायु या जलका प्रवाह बन्द कर देता है? कभी लग रहा है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग और स्त्री-पुरुषोंके नहीं! वह जानता है कि तुम्हारा यह भाव सामयिक है,

है, उसे तुम एक दिन अवश्य समझोगे। वह किसी भी पाकर क्या कभी दु:खको दु:ख समझा जा सकता है? बातके लिये घबराता नहीं। तब तुम्हें भी क्यों घबराना वह तुमपर इतना प्रेम करता है, इस बातको जान लेनेके चाहिये ? दु:ख, दारिद्रच, रोग, शोक, ताप सभी आयें, बाद दु:खकी बात याद करनेमें भी तुम्हें लज्जा मालूम खूब आयें! किसी तरह भी डरो मत! यह सारी सौगात होगी। इसीसे कहा जाता है कि लाभ या हानि, अर्थ उसीके घरसे तो आती है। बडे सम्मानसे सिर झुकाकर या अनर्थ, हेय या उपादेय, जन्म या मृत्यू, विच्छेद या उसकी दातको ग्रहण करो। ऐसा दिन फिर कब मिलेगा? मिलन—जो कुछ भी प्राप्त हो, सब कुछ उसका दिया उसके दिये हुए भारको उठानेका ऐसा अच्छा मौका और हुआ समझकर निश्चिन्त हो रहो! मैं उसका सेवक हूँ— कब होगा? इस तरह उसे जोरसे पकड़ने, जानने और यह सोचकर उसके सम्पूर्ण आदेश पालन करनेके लिये तैयार रहो! अरे! ऐसा मित्र और कोई नहीं है! इतना समझनेका सुअवसर दूसरा नहीं हो सकता, अतएव

मकर-संक्रान्तिपर्वपर गंगासागरयात्रा

विश्वमें विचरण करो!

(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी त्रिपाठी)

एक ख्यातिप्राप्त लोकोक्ति है कि 'सब तीरथ एक किमी० है, अतः वहाँसे उसे देखा जा सकता है।

बार-बार, गंगासागर एक बार'। इसे दो सन्दर्भांमें देखा जा सकता है—प्रथम तो यह कि दूसरे तीर्थोंमें अनेक बार जाने, दर्शन करनेका जो पुण्य होता है-पाट गंगाका मुहाना कहा जाता है। इसी मुहानेके उतना पुण्य गंगासागरके एक बारके दर्शनसे हो जाता है। बीचोंबीच उत्तरसे दक्षिणकी ओर लगभग ३५ किमी०

सदाके लिये नहीं! उसके साथ जो तुम्हारा निगूढ़ सम्बन्ध

उसका दिया हुआ भार सिर चढ़ानेमें कभी पीछे मत हटो,

दु:ख न करो। तुम्हारा ऐसा बन्धु दूसरा कौन होगा?

जिसके नाम लेनेसे, जिसकी बात सुननेसे, घरके सारे काम

दूसरे सन्दर्भके अनुसार प्राचीन कालमें गंगासागरकी यात्राको अत्यन्त दुरूह माना जाता था; क्योंकि वहाँकी भौगोलिक स्थिति अत्यन्त दुर्गम थी और नौकाएँ वहाँ प्राय: डूब जाया करती थीं, परंतु अब ऐसी स्थिति नहीं

है। गंगासागरतीर्थ पहुँचनेके लिये तीर्थयात्रियोंको हावड़ा रेलवे स्टेशन पहुँचना होता है। हावडा रेलवे स्टेशनसे ही लगा हुआ कोलकाता ट्रांसपोर्ट कारपोरेशनका बस

स्टैण्ड है। बसें तीर्थयात्रियोंको हावड़ा रेलवे स्टेशनसे हराउड प्वाइंट, कागद्वीप नामखाना, बूड़ी गंगा (नामघाट)

इत्यादि स्थानोंको ले जाती हैं, यात्री वहाँसे फिर आठ-दस कि॰मी॰ लांचके द्वारा हुगली (गंगा) नदीको पारकर

चाहिये। स्नान करनेके बाद कपिलमुनि-मन्दिरके दर्शन करना चाहिये। असली कपिलमुनि-मन्दिर लुप्त हो गया है, वर्तमानमें जो कपिलमुनि-मन्दिर है, वह समुद्रमें नहीं कुचबेडिया बस-स्टैण्डसे बसद्वारा गंगासागर बस-स्टैण्ड

डूबता। इस प्रकार गंगासागरयात्रा अब बहुत आनन्ददायक पहुँच जाते हैं। गंगासागर बस-स्टैण्डसे गंगासागर तीर्थ एवं पुण्यमयी है। मकरसंक्रान्तिक पर्वपर देश-विदेशसे लगभग डेढ़ किमी० है। बस-स्टैण्डसे कपिलमुनिमन्दिर लाखों दर्शनार्थी यहाँ आते हैं।

िभाग ९०

नहाना, धोना, खाना सब भूल जाते हैं, उसको हृदयमें

प्रेमपूर्ण और कोई नहीं है! प्राण भी इतने अपने नहीं हैं।

यह समझकर निर्भय चित्तसे निश्चिन्त होकर उसके

डीघा (उड़ीसा-कोलकाता पश्चिम बंगालकी

सीमा)-चित्तागोंग (बॅंगलादेश)-तक विस्तृत गंगाजीका

और पूर्वसे पश्चिमकी ओर लगभग १५ किमी० क्षेत्रफलका एक टापू है जो कि माँ गंगाकी एक १०-१२ किमी०

चौड़ी धाराके रूपमें प्रवाहित हुगली नदी सागर-संगमके

पूर्वी तटपर स्थित है। इसे ही गंगासागर कहते हैं। यहाँ

यात्री समुद्रदेवताको नारियल और जनेऊ भेंट करते हैं।

पूजन एवं पिण्डदानके लिये बहुतसे पण्डागण गाय-

बिछयाके साथ खड़े रहते हैं, जो कि इच्छित पूजा करा

देते हैं। समुद्रमें पितरोंको जल अवश्य अर्पित करना

साधकोंके प्रति— संख्या २] साधकोंके प्रति— [विश्वास और जिज्ञासा] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) होती है, जहाँ सन्देह होता है। भक्तिमार्गमें विश्वास, मनुष्य अपनी ओर नहीं देखता कि मेरा जन्म क्यों हुआ है, मुझे क्या करना चाहिये और मैं क्या कर रहा नि:संदिग्धता मुख्य है और ज्ञानमार्गमें जिज्ञासा, सन्देह हूँ ? जबतक वह उसपर ध्यान नहीं देता, तबतक उस मुख्य है। विश्वास और जिज्ञासा—इन दोनोंको मिलानेसे मनुष्यका पद आप क्षमा करेंगे, पशुसे भी नीचा है! पशु, साधकका जीवन शुद्ध नहीं रहता, अशुद्ध हो जाता है। पक्षी, वृक्ष आदिसे भी उसका जीवन नीचा है! मनुष्य विश्वास किसमें होता है ? जिसमें हम इन्द्रियोंसे, होकर भी सावधानी नहीं है तो क्या मनुष्य हुआ? अन्त:करणसे कुछ नहीं जानते, उसमें विश्वास होता है मनुष्यमें तो यह सावधानी, यह विचार होना ही चाहिये अथवा नहीं होता। जैसे, 'भगवान् हैं'—यह विश्वास कि हमारा जन्म क्यों हुआ है और हमें क्या करना होता है अथवा नहीं होता—ये दो ही बातें होती हैं। चाहिये तथा क्या नहीं करना चाहिये। स्वयं इसका भगवान् हैं कि नहीं — यह बात वास्तवमें विश्वासीकी समाधान न हो तो न सही, पर संतोंकी वाणीसे, शास्त्रोंसे नहीं है, जिज्ञासुकी है। हैं कि नहीं—यह सन्देह जीवात्मापर होता है अथवा संसारपर होता है। कारण इसका पूरा समाधान हो जायगा कि यह मनुष्य-जन्म कि 'मैं हूँ' इसमें तो सन्देह नहीं है, पर 'मैं क्या हूँ' केवल अपना उद्धार करनेके लिये ही मिला है। भगवान्ने अपनी ओरसे यह अन्तिम जन्म दे दिया है, इसमें सन्देह होता है। अतः सन्देहसहित जो सत्ता है, जिससे यह मुझे प्राप्त कर ले। उसमें जिज्ञासा पैदा होती है। स्वयंका और संसारका ब्रह्माजीने यज्ञोंके सहित प्रजाकी उत्पत्ति की-ज्ञान जिज्ञासासे होता है। परमात्माको मानना अथवा न **'सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।'** (गीता मानना—इसमें आप बिलकुल स्वतन्त्र हैं। कारण कि ३।१०) अर्थात् कर्तव्य और कर्ता—ये दोनों एक साथ परमात्माके विषयमें हम कुछ नहीं जानते और जिस विषयमें कुछ नहीं जानते, उसमें केवल विश्वास चलता पैदा हुए। जो कर्तव्य है, वह सहज है। आज जो हमें कर्तव्य-कर्म करनेमें परिश्रम प्रतीत होता है, उसका है। जिसमें विश्वास होता है, उसमें सन्देह नहीं रहता— इतनी विचित्र बात है यह! जैसे स्त्री, पुत्र आदिको

कारण यह है कि हम संसारसे सम्बन्ध जोड़ लेते हैं, इतनी विचित्र बात है यह! जैसे स्त्री, पुत्र आदिको नहीं तो यह स्वयं भी सहज है और इसका जो कर्तव्य अपना मान लेनेसे फिर उसमें यह सन्देह नहीं रहता कि है, वह भी सहज है, स्वाभाविक है! अस्वाभाविकताको यह स्त्री मेरी है कि नहीं? यह बेटा मेरा है कि नहीं? यह स्वयं बना लेता है। इसे यह विचार नहीं होता कि यह लौकिक मान्यता टिकती नहीं; क्योंकि यह मान्यता अस्वाभाविकता कहाँ बना ली? कैसे बना ली? यदि जिसकी है, वह नाशवान् है, परंतु परमात्मा अविनाशी विचार करे तो यह निहाल हो जाय! है; अत: उसकी मान्यता टिक जाती है; दृढ़ हो जाती अब एक बात बताते हैं। दो मार्ग हैं—एक है तो उसकी प्राप्त हो जाती है। हमने सन्तोंसे यह बात

विश्वासका मार्ग और एक जिज्ञासाका मार्ग। विश्वास

वहाँ होता है, जहाँ सन्देह नहीं होता, सन्देह पैदा ही स्वरूप जना देनेकी जिम्मेवारी भगवान्पर आ जाती है! नहीं होता। जो सन्देहयुक्त विश्वास होता है, वह कितनी विलक्षण बात है! भगवान् कैसे हैं, कैसे नहीं—

विश्वास-रूपसे प्रकट नहीं होता; परंतु जिज्ञासा वहाँ इसका ज्ञान उसे स्वयं नहीं करना पड़ता। वह तो केवल

सुनी है कि जो भगवान्को मान लेता है, उसे अपना

भाग ९० ******************** मान लेता है कि 'भगवान् हैं'। वे कैसे हैं, कैसे नहीं— बालक माँपर अपना पूरा अधिकार मानता है कि माँ मेरी यह सन्देह उसे होता ही नहीं। है, मैं माँसे चाहे जो काम करा लूँगा, उससे चाहे जो वस्तु ले लूँगा। बालकके पास बल क्या है? रो देना— पहले केवल भगवान्की सत्ता स्वीकार हो जाय कि 'भगवान् हैं, फिर भगवान्में विश्वास हो जाता है। यही बल है। निर्बल-से-निर्बल आदमीके पास रोना ही संसारका विश्वास टिकता नहीं; क्योंकि हमें इस बातका बल है। रोनेमें क्या जोर लगाना पड़े? बच्चा रोने लग ज्ञान है कि वस्तु, व्यक्ति आदि पहले नहीं थे, पीछे नहीं जाय तो माँको उसका कहना मानना पड़ता है। इसी तरह रोने लग जाय कि भगवान् मेरे हैं तो फिर दर्शन क्यों रहेंगे और अब भी निरन्तर नाशकी ओर जा रहे हैं; परंतु नहीं देते ? मुझसे मिलते क्यों नहीं ? भीतरमें ऐसी जलन भगवान्के विषयमें ऐसा नहीं होता; क्योंकि शास्त्रोंसे, संतोंसे, आस्तिकोंसे हम सुनते हैं कि भगवान् पहले भी पैदा हो जाय, ऐसी उत्कण्ठा हो जाय कि भगवान् मिलते थे, पीछे भी रहेंगे और अब भी हैं। भगवान्पर विश्वास क्यों नहीं! इस जलनमें, उत्कण्ठामें इतनी शक्ति है कि बैठनेपर फिर उनमें अपनत्व हो जाता है कि 'भगवान् अनन्त जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं; कोई भी दोष नहीं हमारे हैं'। जीवात्मा भगवानुका अंश है—'ममैवांशो रहता, निर्दोषता हो जाती है। जो भगवान्के लिये जीवलोके' (गीता १५।७); अत: भगवान् हमारे हुए। व्याकुल हो जाता है, उसकी निर्दोषता स्वतः हो जाती इसलिये आस्तिक भाववालोंको यह दूढ़तासे मान लेना है। व्याकुलताकी अग्निमें पाप-ताप जितना शीघ्र नष्ट चाहिये कि भगवान् हैं और हमारे हैं। ऐसी दृढ़ मान्यता होते हैं, उतना शीघ्र जिज्ञासामें नहीं होते। जिज्ञासा होनेपर फिर भगवान्से मिले बिना रहा नहीं जा सकता। बढ़ते-बढ़ते जब जिज्ञासुरूपसे हो जाती है अर्थात् जैसे, बालक दु:ख पाता है तो उसके मनमें माँसे जिज्ञासु नहीं रहता, केवल जिज्ञासा रह जाती है, तब मिलनेकी इच्छा होती है कि माँ मुझे गोदीमें क्यों नहीं उसकी सर्वथा निर्दोषता हो जाती है और वह तत्त्वको लेती ? उसके मनमें यह बात पैदा ही नहीं होती कि मैं प्राप्त हो जाता है। जबतक 'में जिज्ञासु हूँ'—यह मैं-पन रहता है, योग्य हूँ कि अयोग्य हूँ, पात्र हूँ कि अपात्र हूँ। जैसे भगवान्पर विश्वास होता है, ऐसे ही भगवान्के तबतक जिज्ञास्य तत्त्व प्रकट नहीं होता। जब यह मैं-सम्बन्धपर भी विश्वास होता है कि भगवान् हमारे हैं। पन नहीं रहता, तब जिज्ञास्य तत्त्व प्रकट हो जाता है। भगवान् कैसे हैं ? मैं कैसा हूँ—यह बात वहाँ नहीं होती। चाहे जिज्ञासा हो, चाहे विश्वास हो—दोनोंमेंसे कोई भगवान् मेरे हैं; अत: मुझे अवश्य मिलेंगे—ऐसा दृढ़ एक भी दृढ़ हो जायगा तो तत्त्व प्रकट हो जायगा। विश्वास कर ले। यह 'मेरा'-पन बड़े-बड़े साधनोंसे कर्तव्यका पालन स्वत: हो जायगा; जिज्ञासुसे भी ऊँचा है। त्याग, तपस्या, व्रत, उपवास, तितिक्षा आदि कर्तव्यका पालन होगा और विश्वासीसे भी कर्तव्यका जितने भी साधन हैं, उन सबसे ऊँचा साधन है— पालन होगा। दोनों ही अपने कर्तव्य-कर्मका तत्परतासे भगवान्में अपनापन। अपनेपनमें कोई विकल्प नहीं पालन करेंगे। विश्वासी मनुष्य कर्तव्यकी दृष्टिसे कर्तव्यका पालन होता। करनेवाले तो करनेके अनुसार फलको प्राप्त करेंगे, पर भगवान्को अपना माननेवाले मुफ्तमें पूर्ण नहीं करता; परंतु भगवान्के वियोगमें रोता है। रोनेमें ही भगवान्को प्राप्त करेंगे। करनेवाले जितना-जितना करेंगे, उसका कर्तव्य पूरा हो जाता है। उसमें केवल उनको उतना-उतना ही फल मिलेगा, परंतु भगवान्में भगवत्प्राप्तिकी उत्कण्ठा रहती है। केवल भगवान्-ही-असंगर्पभांक्षमस्र भेक्षान्यर भूग धार्यायक्षारु स्पर्वका एवस्य नेवान् अस् रहति श्री प्रमित्र निर्देश अरं प्रकार विस्तु

साधकोंके प्रति— संख्या २] सुहाती नहीं—'अब कुछ भी नहीं सुहावे, एक तू ही क्या इच्छा करे ? 'का माँगू कछु थिर न रहाई। देखत मन भावे।' दिनमें भूख नहीं लगती, रातमें नींद नहीं नैन चल्यो जग जाई॥' संसारकी इच्छा मिटते ही आती, बार-बार व्याकुलता होती है—'दिन नहिं भूख भगवानुका विरह आ जाता है। संसारकी इच्छा, आशा रैन नहिं निद्रा, छिन छिन व्याकुल होत हिया।' ही भगवान्के विरहको रोकनेवाली वस्तु है। व्याकुलतामें बहुत विलक्षण शक्ति है। यह जो भजन-मनुष्य जिसे नाशवान् जानता है, फिर भी उसकी स्मरण करना है, त्याग-तपस्या करना है, तीर्थ-उपवास आशा रखता है तो यह बहुत बड़ा अपराध करता है। आदि करना है, ये सभी अच्छे हैं, परंतु ये धीरे-धीरे झुठ-कपट करके, जालसाजी-बेईमानी करके अपनी पापोंका नाश करते हैं और व्याकुलता होनेपर आग लग असत् भावनाको दृढ् करता है, तो इससे बढ़कर अनर्थ जाती है, जिसमें सब पाप-ताप भस्म हो जाते हैं। क्या होगा? धन है, बेटा-पोता है, बल है, विद्या है, प्रश्न—ऐसी व्याकुलता कैसे पैदा हो? योग्यता है, पद है, अधिकार है, ये कितने दिनसे हैं? कितने दिन रहेंगे? इनसे कितने दिन काम चलायेंगे? उत्तर—संसारके संयोगका सुख न लें। जैसे प्राण चलता रहता है तो चलनेमें परिश्रम होनेसे भूख-प्यास इनके साथ जितने दिन संयोग है, उसका वियोग स्वत: पैदा होते हैं; परंतु दिनभर तरह-तरहके पदार्थ खाते होनेवाला है। वह वियोग शीघ्र हो, देरीसे हो, कब हो, रहेंगे तो असली भूख नहीं लगेगी। दूसरा खाना बन्द करें, कब नहीं हो—इसका पता नहीं, पर संयोगका वियोग केवल भोजनके सिवाय कुछ न खायें तो भूख लग जायगी, होगा-इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिनका वियोग हो तेज हो जायगी। ऐसे ही केवल भगवान्को चाहें, उनके जायगा, उनपर विश्वास कैसे ? जो प्रतिक्षण बिछुड़ रहा सिवाय और कुछ न चाहें। सुख, मान, बड़ाई, आदर, है, उसे कबतक निभायेंगे? वह कबतक सहारा देगा? आराम, आलस्य आदि किसी प्रकारकी इच्छा न हो। वह कबतक आपके काम आयेगा? फिर भी उसपर विश्वास करना अपनी जानकारीका स्वयं निरादर करना किसी भी वस्तुसे सुख न लें। भूख लगे तो रोटी खा लेनी है, नींद आये तो सो जाना है, पर उसमें सुख नहीं लेना है। अपनी जानकारीका अनादर करना बहुत बड़ा है। ऐसा परहेज रखें तो व्याकुलता पैदा हो जायगी। अपराध है। अपराध पापोंसे भी तेज होता है। जो जीव कुछ-न-कुछ असत्का आधार बना लेता है, 'परमात्मा है'—इसे मानता नहीं और 'संसार है'—इसे जिससे वह सत्से विमुख हो जाता है। अत: असत्का मानता है, वह महान् हत्यारा है, पापी है। उपयोग कर लें, भोजन कर लें, जल पी लें, सो जायँ, आप जानते हैं कि संसार नहीं रहेगा, शरीर नहीं सब काम कर लें, पर भीतर इनका आधार, विश्वास, रहेगा, फिर भी चाहते हैं कि इतना सुख ले लें, इतना आश्रय मत रखें, फिर व्याकुलता पैदा हो जायगी। लाभ ले लें, इस वस्तुको ले लें अर्थात् जानते हुए भी हम सबको इस बातका प्रत्यक्ष ज्ञान है कि शरीर मानते नहीं! इसमें अनजानपनेका दोष नहीं है, न रहनेवाला नहीं है, सम्पत्ति रहनेवाली नहीं है, कुटुम्ब माननेका दोष है, जो आपको स्वयं दूर करना पड़ेगा। जानकारीकी कमी होगी तो जानकार लोग बता देंगे, रहनेवाला नहीं है, यह जो कुछ दीखता है, यह सब रहनेवाला नहीं है। ऐसा जानते हुए भी इस ज्ञानका शास्त्र बता देंगे, संत-महात्मा बता देंगे, भगवान् बता निरादर करते हैं—यह बड़ा भारी अवगुण है, बड़ी भारी देंगे, पर जाने हुएको आप नहीं मानेंगे तो इसमें दूसरा भूल है। यदि इस ज्ञानका आदर करें तो संसारकी इच्छा कुछ नहीं कर सकेगा। मानना तो आपको ही पडेगा, मिट जायगी; क्योंकि जो वस्तु स्थिर है ही नहीं, उसकी इतना काम आपका स्वयंका है।

श्रीगंगाजीका तीर्थत्व एवं माहात्म्य (मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

श्रीहरिहरात्मिका-विष्णुपादाब्जसम्भूता, ब्रह्मद्रवस्वरूपा, चला जाता है। त्रिभुवनपावनी, पतितपावनी भगवती भागीरथी गंगाकी महिमा

वेदेतिहासपुराणस्मृति-धर्मशास्त्र और सन्तवाणीमें प्रभूत मात्रामें

गायी गयी है। वस्तुत: 'तीर्थ' पद चरितार्थ ही गंगाजीके करते ही विष्णुलोक चले गये तो परिवारका क्या होगा? स्वरूपमें होता है। किसी भी जलमय तीर्थमें तीर्थत्वका आधान

करना होता है तो उसे हमारे शास्त्र गंगाके रूपमें व्यवहृत

करते हैं। अनेक पवित्र पौराणिक कुण्ड-सरोवर-कृप-नदी

आदिको जब तीर्थके रूपमें प्रतिपादित करना होता है तो उसे 'गंगा'कह दिया जाता है। जैसे हमारे ब्रजमण्डलमें श्रीगोवर्धनमें

स्थित कुण्डको मानसी गंगाके रूपमें स्वीकार किया जाता

है। उत्कलप्रान्तमें श्रीगीतगोविन्दकार जयदेवमहाप्रभुके लिये सरोवरमें श्रीगंगाजी प्रकट हुईं, उस सरोवरको आज भी

जयदेवी गंगा कहा जाता है। व्रजके अनेक पौराणिक सरोवरोंको गंगाका स्वरूप माना जाता है। व्रजमें भाण्डीरकृपके रूपमें

गंगाजीको ही स्वीकार करते हैं। श्रीगंगाजीसे भिन्न नदियोंकी

निरतिशय पावनताका निरूपण गंगाजीके रूपमें करते हैं। जैसे—गण्डकीको शालग्रामी गंगा, सरयुको रामगंगा, यमुनाको

कृष्णगंगा, दक्षिण भारतकी पुण्य निदयोंको गोदावरी गंगा, कावेरी गंगा, वेत्रवती गंगा, गौतमी गंगा आदिके नामसे जानते हैं। **'धन्य देस सो जहँ सुरसरी।'** कहकर श्रीतुलसी-

दासजीने गंगाजीके प्रति भाव निवेदित किया है। श्रीतुलसी-साहित्यमें गोस्वामीजीकी गंगाप्रीति छलकती हुई दिखायी

पड़ती है। श्रीयमुनातटपर जन्मे महात्मा तुलसीदासजीने अन्तिम क्षण गंगातटपर निवासकर काशीलाभ प्राप्त किया था। इसी प्रकार जगदुगुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यजीने अन्तिम क्षणतक

काशीके पंचगंगाघाटपर वास करते हुए गंगासेवन किया। आचार्यचरणके शिष्य—श्रीअनन्तानन्द, सुखानन्द, योगानन्द,

गालवानन्द, सुरसुरानन्द, भावानन्द, रैदास, कबीर आदिने भी

श्रीगंगाजीका आश्रय लिया था। हमने अपने गुरुजनोंसे सुना है कि किसी अति सरल

श्रद्धावान् विश्वासी ब्राह्मणदेवताने पढ़ा था कि— गङ्गा गङ्गेति यो ब्रुयाद् योजनानां शतैरिप।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ अर्थात् सैकड़ों योजन दूरसे भी जो—गंगा-गंगा ऐसा

माहात्म्यमें श्रद्धा-विश्वास रखकर वह सरलमति ब्राह्मण गंगास्नान इस भयसे नहीं करता कि कहीं स्नान

एक दिन संसारके सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मसे मुक्त होकर

वह ब्राह्मण सबसे विदा माँगकर हरिद्वार गंगास्नानके लिये गया, गोता लगाया, किंतु जब वैकुण्ठ नहीं गया तो

आश्चर्यचिकत होकर विचार करने लगा कि शास्त्रवचन तो सर्वथा सत्य हैं, फिर अनुभृति उस प्रकारकी क्यों नहीं

हो रही है? विचार कर ही रहा था कि देवर्षि नारदजीका दर्शन हुआ। प्रणामकर पूछा कि नारदजी आप ही बतायें,

में माहात्म्यके अनुसार वैकुण्ठ क्यों नहीं गया?

श्रीनारदजीने कहा शास्त्रवचन सत्य हैं, गंगाजीकी जितनी महिमा गायी गयी है, उससे कई गुना अधिक उनकी महिमा है। आपके विष्णुलोक न जानेमें क्या हेतु है—यह मुझे समझमें नहीं आ रहा है। मेरे पिता ब्रह्माजीने भगवान वामनका चरण

धोकर गंगाजीको प्रकट किया, उन्हें कमण्डलुमें रखा, आपके प्रश्नका उत्तर वे अवश्य बतायेंगे। चलो, ब्रह्मलोक चलें। नारदजी ब्राह्मणको लेकर ब्रह्मलोक पहुँचे, ब्राह्मणकी मुक्तिविषयक जिज्ञासा प्रकट की तो ब्रह्माजीने कहा-

वत्स! गंगाकी महिमा अनन्तगुणित है, मैंने भगवानुके चरण धोकर उन्हें कमण्डलुमें विराजमान अवश्य किया, किंतु सम्पूर्ण माहात्म्य तो भूतभावन विश्वनाथ, जिनकी जटाओं में

गंगाजी विराजमान हैं, वे ही जान सकते हैं। श्रीनारदजी और ब्रह्माजी ब्राह्मणको लेकर शिवलोक पहुँचे और माहात्म्य-श्रवणकी जिज्ञासा की तो भगवान् शिवने कहा कि ब्रह्मद्रवा

भगवच्चरणोदकभूता गंगा मेरी जटाओंमें शोभायमान होती हैं, किंतु सम्पूर्ण माहात्म्य मैं भी नहीं कह सकता, जिनके

चरणोंसे प्रकट हैं, उन्हीं नारायणसे पूछा जाय। ब्रह्माजी, शंकरजी, नारदजी एवं ब्राह्मण वैकुण्ठ पहुँच गये। भगवान्से पूछा,

फलस्वरूप ब्राह्मणको मेरे ही स्वरूप नारदजीका दर्शन हुआ। सदेह ब्रह्मलोक, शिवलोकका भी दर्शन हुआ और अब आपकी कृपासे यह वैकुण्ठ आ गया, अत: इस ब्राह्मणको मेरी गोदमें उच्चारण करता है, वह सर्वपापसे मुक्त होकर विष्णुलोकको बैठा दो-यही तात्पर्य इस गंगा-माहात्म्यके श्लोकका है।

भगवान्ने हँसते हुए कहा—शास्त्रवचनमें श्रद्धा-विश्वासके

| संख्या २] गोस्वामी श्रीतुल | नसीदासजीकी गंगा-स्तुति | |
|--|---|--|
| गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी गंगा-स्तुति | | |
| | ान्द्रप्रसादजी द्विवेदी) | |
| गंगाजीका स्वरूप अनुपम तथा उनकी महि | • | |
| अपार है। अनादिकालसे ही गंगा हमारी धार्मिक १ | | |
| एवं आस्थाकी जीवनधारा रही हैं। जैसे सरस्वती अ | | |
| सलिला हैं, वैसे ही गंगा हमारे भीतर विद्यमान चिन | 3 3. | |
| सत्ता एवं गतिशीलताकी प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृर्ी | | |
| गंगा एक सामान्य वारिधारा अथवा नदीमात्र न हो | कर पंक्तियोंमें गंगाकी महत्तापर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है। | |
| हमारे धार्मिक एवं बौद्धिक इतिहासकी विकासम | नयी स्मरण रहे कि गोस्वामीजी जब काशीवास कर रहे | |
| चेतना रही हैं।'जल ही जीवन है'यह तथ्य इस बात | का थे, तब उनका यह दृढ़ विश्वास था कि भवानी-शंकर | |
| द्योतक है कि जलकी प्रवाहिका शक्ति अथवा उर | तके तथा पुण्यसलिला गंगाजीकी अमित कृपामें उन्हें प्रभु | |
| प्रवाहमें निहित ऊर्जा परमात्माकी ही वह दिव्य श | क्ति श्रीरामकी निर्भरा भक्ति प्रदान करनेकी पूर्ण क्षमता है। | |
| है, जो सम्पूर्ण सृष्टिका संचालन करती है। इसीवि | लये तभी तो 'विनय-पत्रिका' में उन्होंने शंकरजी तथा | |
| जलके अजस्र प्रवाहमें, उसकी निर्मलतामें हमें परमात्म | ाकी भवानीजीकी वन्दनाके तुरंत बाद त्रय-ताप-हारिणी | |
| पवित्रताके दर्शन होते हैं। तभी तो गंगाकी पुण्यध | भर्मी गंगाजीको वन्दना को है। गोस्वामीजी गंगाजीको परब्रह्म | |
| निर्मलताको जीवनकी शुचिताका प्रेरक माना गया है त | तथा परमात्माका जलरूप ही मानते थे— | |
| गंगाजलको आदरपूर्वक अमृत कहा गया है। हम | नारी ब्रह्म जो ब्यापकु बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ग्यान-गुनीको। | |
| सनातन संस्कृतिमें जिन पवित्र सदानीरा सरिताओ | in × × × × × | |
| अपनी अन्त: तथा बाह्मशुद्धिके लिये कृतज्ञतापूर्वक आव | हिन सोइ भयो द्रवरूप सही, जो है नाथु बिरंचि महेस मुनीको। | |
| किया जाता है, उनमें गंगाका स्थान सर्वोपरि है— | (कवितावली पद १४६) | |
| गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। | गंगाजीको 'ब्रह्ममयवारि' कहनेकी पृष्ठभूमिमें | |
| नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥ | सम्भवत: गोस्वामीजीके मनमें गंगाके उद्भवकी वह | |
| ध्यातव्य है कि नदियों और मानवके अन्योन्या | श्रय पौराणिक कथा विद्यमान थी, जिसमें सृष्टिके प्रारम्भमें | |
| सम्बन्धकी स्पष्ट व्याख्या हमें ऋग्वेदके तीसरे मण्डल | तके ब्रह्माजीने उसे सर्वश्रेष्ठ मानकर अपने कमण्डलुमें रख | |
| तैंतीसवें सूक्त (३।३३)-में विश्वामित्र और नदियं | ोंके लिया। कालान्तरमें ब्रह्माजीने वामनावतार विष्णुभगवान्के | |
| संवादमें मिलती है। ऋग्वेदके ही दशम मण्डलमें 'नव | दी- चरणोंको उसी जलसे धोकर पूजन किया। भगवान्के | |
| सूक्त' में भारतकी जिन प्रमुख नदियोंका वर्णन है, उ | नमें चरणोंका वह धोवन हेमकूट पर्वतपर गिरा, जिसे | |
| गंगा प्रथम हैं— | शंकरजीने अपनी जटाओंमें धारण कर लिया। तत्पश्चात् | |
| इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्य | मगीरथ उसे अपनी तपस्यासे पृथ्वीपर ले आये। भगवान्के | |
| असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुद्धा सुषोमर | मा।। चरणोंका धोवन होनेके कारण ही गंगाजीको गोस्वामीजीने | |
| (ऋग्वेद १०।७५। | ५) 'बिस्नु-पद-सरोजजासि' (वि॰ प॰ १७) तथा 'विष्णु - | |
| गोस्वामीजीकी गंगा-स्तुति— अपनी उत्कृष्ट | एवं <i>पदकंज-मकरंद'</i> (वि० प० १८।२) आदि विशेषणोंसे | |
| कालजयी कृतियोंमें गोस्वामीजीने गंगाकी अलौवि | क विभूषित किया है। वही गंगा 'मिलित जलपात्र - | |

भाग ९० ******************* रहेंगे। वे कहते हैं कि हे भागीरथि! भले ही मुझे अजयुक्त-हरिचरणरज, विरज-वर-वारि त्रिपुरारि शिर-धामिनी' है अर्थात् हे गंगे! भगवच्चरणरेणुसहित बारम्बार शरीर धारण करना पड़े, मैं तो श्रीरघुनाथजीका तुम्हारा जल ब्रह्माके कमण्डलुमें भरा रहता है। तुम दास होकर तुम्हारे ही तटपर सदा वास करूँगा। यथा 'बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीरको ह्वै तव तीर शिवजीके मस्तकपर विराजती हो। वे आगे कहते हैं— 'स्वर्ग-सोपान, विज्ञान-ज्ञानप्रदे, मोह-मद-मदन-रहौंगो। भागीरथी! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न *पाथोज-हिमयामिनी।*'(वि० प० १८।३) अर्थात् हे खोरि लगै सो कहौंगो॥' (कवितावली पद १४७) जाह्नवी! तुम स्वर्गकी निसेनी और ज्ञान-विज्ञान प्रदान गंगातटवासी बनकर ही गोस्वामीजी हरिभक्तिमें लीन करनेवाली हो। तुम मोह, अहंकार और कामरूपी रहनेकी कामना करते हैं। तभी तो गंगाजीको 'भक्ति-कमलोंके नाशके लिये मानो शिशिर-ऋतुकी रात्रि हो। कल्पथालिका' अर्थात् भक्ति-रूप कल्पवृक्षके लिये गंगाको 'त्रिपथगासि' (वि० प० १७) कहकर थाल्हा (आधार)-सदृश होनेवाली कहकर उन्होंने उनसे प्रार्थना की है कि तुम मुझ तुलसीदासको ऐसी गोस्वामीजीने उसे तीन मार्गों अथवा धाराओं अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें प्रवाहित होनेवाली बताकर बुद्धि दो, जिससे मैं श्रीरघुनाथजीके नामका सतत स्मरण करता हुआ तुम्हारे तीर-तीर विचरण कर सकूँ, यथा 'तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस-बीर, बिचरत मित देहि मोह-महिष-कालिका॥' (वि० प० पद १७।३) उन्होंने गंगाजीको 'अमित-महिमा, अमितरूप (वि० प० पद १८।५) अर्थात् असीम महिमा तथा

क्रमशः उसे 'मन्दािकनी' (आकाशगंगा), गंगा तथा भोगावती (प्रभावती या पातालगंगा) नामसे विख्यात होना कहा। ऐसा कहनेसे उनका संकेत है कि त्रिपथगा पृथ्वीपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको और स्वर्गमें देवताओंको परमगति देती है, यथा 'सुर-नर-मुनि-नाग-सिद्ध-सुजन मंगल-करनि।'(वि० प० २०।१) अनुपम रूपवाली कहकर उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और अथवा यों कहें कि देव, मनुष्य, नाग, मुनि, सिद्ध और महेश—तीनोंकी महिमाकी सीमा बढ़ाने अथवा प्रतिष्ठित सन्त-सभीके दैहिक, दैविक तथा भौतिक त्रिविध तापों करनेवाली बताया है—'महिमाकी अवधि करसि बहु **बिधि हरि-हरिन।** (वि० प० पद० २०।३) तात्पर्य तथा दु:ख, दोष, दुरित, दाह-दारिद (दारिद्रच)-का

नाश तुम्हारे दर्शनमात्रसे हो जाता है, यथा 'देखत दुख-

दोष-दुरित-दाह-दारिद दरनि॥'(वि० प० २०।२)

उन्होंने गंगाजीकी दैवी शक्ति 'पाप-छालिका', 'त्रयताप-विष्णुके चरणोंसे निकलनेसे तथा शिवजीके मस्तकपर विराजनेसे-इन तीनों देवताओंकी महिमाको अन्तिम हारि' तथा 'मोह-महिष-कालिका' अर्थात् पापोंको सीमा (पराकाष्ठा)-तक पहुँचा दिया। इसीलिये वे धोकर नष्ट कर देनेवाली, दैहिक, दैविक तथा भौतिक क्रमशः ब्रह्मकमण्डलवासिनि, विष्णुपदी तथा जटाशंकरी इन तीनों तापोंको हरनेवाली तथा अज्ञानरूपी महिषासुरका संहार करनेवालीमें पूर्ण आस्था एवं दृढ़ विश्वास रखते कहलायीं । हुए उन्हें अपनी मातावत् मान लिया था। अतएव वे कुछ विद्वानोंका मत है कि 'विनय-पत्रिका' में आश्वस्त थे कि माता-स्वरूपा गंगाजी उन्हें पुत्रवत् वर्णित गंगा-स्तुतिवाले चार पदों (१७, १८, १९ तथा

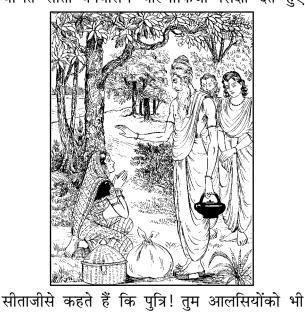
यह है कि गंगाजी स्वयं तो महिमाकी अवधि (पराकाष्ठा)

हैं ही, अपितु उन्होंने ब्रह्माजीके कमण्डलुमें रहनेसे,

२०)-में गोस्वामीजीकी फलचतुष्टय (अर्थात् धर्म, मानकर उनके समस्त अपराधोंको क्षमाकर उन्हें रघुपतिचरणरित प्रदान करायेंगी। तभी तो उन्होंने निश्चय अर्थ, काम तथा मोक्ष)-की कामना परिलक्षित होती है। किर्याण्यांक्का के इंदर्शार्व जिनारहर्ग्र गंक्रारुं विरुद्ध राष्ट्र स्वर्धि विद्यालय के बिद्ध अपूर्ण के स्वर्ध के स्वर्य के स्वर्य के स्वर्ध के स्वर्य के स

गंगाजीपर भी अक्षरशः लागू होता है—यथा 'दरस परस का तथा चतुर्थ 'अर्थ' का द्योतक है। अन्य मनीषियोंका मत है कि 'त्रिपथगा' होनेके कारण गोस्वामीजीने प्रथम मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥ नदी तीन पदोंमें गंगाजीकी अलौकिकता (अद्भृत शक्ति) पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा प्रदर्शित की तथा चतुर्थ पदमें भव-भामिनी (शिवपत्नी **बिमल मित॥** (रा॰च॰मा १।३५।१-२) वास्तवमें पार्वती)-के रूपमें अपनी निजी या वैयक्तिक रुचि व्यक्त गंगाजीका स्मरण, दर्शन, स्पर्श, स्नान तथा पान अत्यन्त की; क्योंकि वे शंकरजी तथा पार्वतीजीको ही अपना कल्याणकारी है तथा सभी प्रकारकी शुद्धि प्रदान माता, पिता तथा गुरु मानते थे, यथा 'तुलसीकी सुधरे करता है। सुधारे भृतनाथहीके। मेरे माय बाप गुरु संकर-गंगाजी सभीको शुभगति देनेवाली हैं। गीतावलीमें भवानिये॥'(कवितावली ७।१६८।७-८) गंगाजीकी वर्णित सीता-वनवासमें वाल्मीकिजी शिक्षा देते हुए असीम अनुकम्पाकी याचना करते हुए वे प्रार्थना करते हैं कि हे शिवप्रिये! हे भव-भयहारिणि! मुझ तुलसीदासको

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी गंगा-स्तुति



मातु, दासतुलसी त्रासहरिण भवभामिनी।' (वि० प० पद १८।५) गोस्वामीजी कलियुगमें सद्गतिके लिये दो ही आधार (साधन) मानते थे—एक श्रीरामनाम तथा दूसरा देवनदी गंगाजीका पिवत्र जल। उन्होंने स्पष्टतया कहा है—'किल पाषंड प्रचार प्रबल पाप पावँर पितत। तुलसी उभय अधार राम नाम सुरसिर सिलल॥'(दोहावली ५६६) वे आगे कहते हैं कि यदि

ऐसी अलौकिक पतितपावनी गंगा न होती तो कलियुग

न जाने क्या-क्या अनर्थ कर डालता और तुलसीदास इस अपार संसार-सागरको कैसे पार कर पाता? 'तो बिन्

जगदंब गंग कलिजुग का करित ? घोर भव अपारसिंधु

तुलसी किमि तरित॥ (वि० प० पद १९।३)

श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनन्य प्रेम अथवा पूर्ण निर्भरा भक्ति प्रदान कीजिये—'देहि रघुबीर-पद-प्रीति निर्भर

संख्या २]

'श्रीरामचिरतमानस' में गंगाजीकी अद्भुत, मंगलदायिनी तथा त्रैलोक्यसुखदायिनी महिमाकी भगवान् श्रीरामने स्वयं अपने श्रीमुखसे सराहना करते हुए कहा है—'गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करिन हरिन सब सूला॥ (२।८७।४) अर्थात् गंगाजी समस्त आनन्द-मंगलोंकी मूल हैं। वे सब सुखोंको देनेवाली तथा सब पीड़ाओंको

हरनेवाली हैं। विचारणीय है कि अयोध्यामें सरयूकी

अपार महिमामें जो कुछ गोस्वामीजीने कहा है, वह कथन

भव्य एवं महिमामय रूपसे वर्णन किया है। वस्तुतः गोस्वामीजीका जीवन भी श्रीगंगाजीके साथ रच-बस गया था। उनके जीवनका अधिकांश भाग भागीरथीके तटपर ही बीता, जिससे उन पुण्यमयीका दरस, परस और स्पर्श उनके जीवनका अंग बन गया था और अन्तमें उन्हींकी पुण्य सन्निधिमें उन्होंने अपनी लोकयात्रा पूरी की— रामनाम जसु बरनि अब चहत होन यह मौन।

तुलसीके मुंह दीजिये तुलसी सुरसरि सोन॥

शुभगति देनेवाली गंगाजीकी मन लगाकर सेवा करना—

'आलसिन्हकी देवसरि सिय सेइयह मन मानि॥'

(गीतावली उत्तरकाण्ड ३२।३) इस प्रकार गोस्वामीजीने

भगवती भागीरथी गंगाजीका अपने काव्योंमें अत्यन्त

माँ गंगाके जलप्रवाहमें प्रभुका प्रेमप्रवाह बहता है (श्रीबालकृष्णजी मेहता)

िभाग ९०

अद्वितीय और अलौकिक भारतीय संस्कृति गीता, गंगाकी प्रेरणा—माँ गंगाके किनारे अनन्त ऋषियोंने

मानवी जीवनको उन्नत बनानेके लिये तपस्या की है, हजारों

गोविन्द, गायत्री और गंगाजीके कारण आज भी विश्वभरमें

अपनी महक फैला रही है, इन सभीका पावित्र्य और ऋषियोंने गंगाके तटपर अपने आश्रम बनाकर ज्ञानकी

इनकी यथार्थता आज भी प्रेरक और स्फूर्तिप्रद है।

उपासना की है। ऋषियोंने मानवको मानव बनाया है,

गंगा समस्त ब्रह्माण्डोंकी अधिष्ठात्री, विद्यारूपिणी,

गंगाजीकी तरह ऋषियोंने मानवको जीवन दिया है। ऋषियोंने

आरोग्यदायिनी, करुणामयी, आनन्दमयी, जीवनदायी, ही मानवमात्रमें अपना जीवन चलानेवाले ईश्वरका सान्निध्य

मंगलमयी, ज्ञान-कर्म और भक्तिकी त्रिवेणीरूपा, विशुद्ध और सामीप्य समझाया। 'ऋषति गच्छति संसारपारं इति

धर्मरूपिणी तथा भक्ति-मुक्तिदायिनी जो मानी जाती हैं, ऋषिः 'ऐसी ऋषिकी व्याख्या है। ऋषिकी आँखोंके सामने यह बिलकुल सही है। एक दैवी मातृस्वरूपा माँ गंगा संसारके इह लौकिक और पारलौकिक कल्याणका स्पष्ट दर्शन होता है।

परम तीर्थके रूपमें सर्वत्र व्याप्त हैं। अविरत कर्मयोग करनेवाले भगीरथके प्रयत्नोंसे आँखोंके सामने आती है, ऋषियोंका मानव-समाजपर

अवतरित हुईं भागीरथी मानवमात्रको कर्मयोगका चिरंतन सन्देश देती हैं। अपने लक्ष्यको ध्यानमें रखकर अविरल अन्त:करणका प्रेम होता है। पतिव्रता स्त्री जिस तरह पतिके घरको स्वच्छ और अच्छा रखनेका प्रयत्न करती

गतिसे दौड़ती, उछलती, अपने उज्ज्वल कर्मयोगसे अनन्त

गाँवोंको फलद्भम बनाती हैं। गंगा, जो सागरमें मिलकर भगवान् विष्णुके चरणोंका पूजन करती हैं, समर्पण-भक्ति और ध्येयनिष्ठाका उत्कृष्ट सन्देश दे रही हैं।

मानव भी ज्ञान प्राप्त करके अविरत कर्मयोग करते-करते अन्तमें अपना जीवन परम कृपावन्त भगवानुके चरणोंमें

समर्पित करे तो वह भी गंगामैया-जैसा पावन हो सकता है। गंगास्नानके पीछे सबसे बडी प्रभावित करनेवाली विशेषता जो मेरे दिलको छू लेती है, वह है भावपूर्वक

स्नानकी बात। भावनाशून्य सिर्फ शरीरको स्वच्छ करता है, जबिक भावयुक्त स्नान शरीरके साथ मन, बुद्धिको

भी शुद्ध बनाकर जीवनको पावन करता है। देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

देव, तीर्थ, द्विज, मन्त्र, ज्योतिषी, वैद्य और गुरु—

इनके बारेमें जैसी जिनकी श्रद्धा होगी, वैसा उनके जीवनमें फल मिलेगा।

'गंगा-स्नानसे मुझमें पावित्र्य निर्माण होगा ही' इस श्रद्धासे यदि स्नान किया जाय तो वह स्नान मनुष्यके

उत्साह और प्रकाशका सुजन करेगा।

अन्त:करणमें न केवल पावित्र्यका ही निर्माण करेगा, बल्कि गंगाका स्मरण मानवके मनमें भाव-जागृति,

करके अपनेको कृतार्थ समझता है और वहाँसे कोई अद्भुत प्रेरणा लेकर वापस लौटता है। गंगाका किनारा एक समय सच्चे अर्थमें तपोभृमि था। उसके तटपर ब्रह्मर्षियोंने तप किया है और अनेक

उसकी संतान-जैसी काशी तो विद्याका तीर्थधाम रही है। गंगामैया याने पवित्रताका प्रेमप्रवाह—प्रभुके चरणोंसे

निकला हुआ पावित्र्य शिवजीके मस्तकपर उतरा और वहाँसे

सेवाकी दीक्षा ग्रहण करके प्रवाहरूपमें पृथ्वीपर बहने लगा। गंगा इसलिये भी पवित्र है कि व्रतनिष्ठ, चारित्र्य-सम्पन्न, तेजमूर्ति भीष्मको उन्होंने जन्म दिया है।

माँ गंगाके तटपर बैठकर पवित्र ऋषिगणकी प्रतिमा

है, उसी तरह ऋषि भी अपने स्वामी भगवानुके घर

जगतुको विशुद्ध रखनेका अहर्निश प्रयत्न करते रहते हैं।

उनकी समाज-सेवा या जगत्-सुधारणा भक्तिके उदरसे

गंगाके दर्शनसे रोमांचका अनुभव करता है। उसमें स्नान

राजर्षियोंने अपने राज्यको छोड़ दिया है। गंगा समाजमें

ईशस्पर्शी विचार ले जानेकी प्रेरणा देनेवाला ज्ञानवारि है।

यही गंगामैया हैं, जिनका स्तनपान करके पुष्ट हुई

गंगाका भव्य इतिहास जिसे ज्ञात है, वह माँ

जन्म लेती है और उसकी नींवमें प्रभुप्रेम होता है।

श्रीमद् आद्यशंकराचार्यजी भी माँ गंगाका विचार करके भावाई हो जाते हैं-

| ांख्या २] माँ गंगाके जलप्रवाहमें प्र | |
|---|--|
| ************************************** | *************************************** |
| गिं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम्। | प्रभुकी बहती हुई करुणा। प्राकृतिक लोगोंके लिये पानी |
| त्रभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे॥ | जीवन है, लेकिन भक्तोंकी दृष्टिसे पानी—यह तो प्रभुकी |
| हे भगवित! तू मेरा रोग, शोक, ताप, पाप और | करुणा है, प्रभुकी जीवन्त करुणाका प्रवाह है। पानीमें |
| कुमतिका नाश कर दे, तू त्रिभुवनका सार है, वसुधाका | एक विशिष्ट दिव्यता Divinity है, नींदमेंसे उठकर थोड़ा- |
| ग़र है। देवी! इस संसारमें तू ही मेरी गति है, गंगाका | सा पानीसे आँख धो डालो और देखिये कितनी स्फूर्ति |
| गहात्म्य अनेक ऋषि-मुनियोंने भावसे गाया है। | आ जाती है, चैतन्य प्राप्त होता है। |
| रामायण-जैसे पावनकारी ग्रन्थके सर्जक महर्षि | संस्कृतमें गंगाका अर्थ है— गंगा = 'गम्यते प्राप्यते |
| मल्मीकिने गंगामैयाकी कितनी आर्द्रतासे प्रार्थना की है— | भगवत् पदं येन सा गङ्गा।' पाण्डुरंग शास्त्रीजीने गंगाकी |
| गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्। | प्रेरक महिमा समझायी है। मानव-जीवनमें सतत गंगा- |
| त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम्॥ | जैसा प्रभुका प्रेम बहता रहता है, यह जो प्रभुका प्रेमप्रवाह |
| मुरारिके चरणोंसे उत्पन्न होनेवाली, त्रिपुरारि शंकरके | है, वही गंगा है। भगवान् माँ-जैसा है, मेरी देखभाल |
| सरपर जो विराजमान है, वह गंगाजल मेरे पाप हरकर | करता है, सोचिये, सुबहमें कौन मुझे उठाता है ? सुबहमें |
| गुझे पावन करे। | कौन मेरी आँखे खोलकर, मेरी चली गयी स्मृतिको वापस |
| गंगामैयाका महिमा-गान किसने नहीं किया है? | देता है ? रातको सोते वक्त अगर स्मृति छोड़ दूँ, तब ही मैं |
| एक स्थलपर कथन है— | सो सकता हूँ और नींद आ सकती है। सफेद रंगकी रोटीका |
| ात्तीरे वसतां सतामपि जलैर्मूलैः फलैर्जीवतां | लाल लहू कौन बनाता है ? Who awakes me in morn- |
| मुक्ताहंममभावशुद्धमनसामाचारविद्यावताम् । | ing, Who induces sleep at night, who digests my |
| क्रवल्यं करबिल्वतुल्यममलं सम्पद्यते हे लया | food? Who runs my metabolism? भगवान्ने केवल |
| सा गंगा ह्यतुलामलोर्मिपटला सद्भिः कुतो नेक्ष्यते॥ | मनुष्य-जन्म दिया है—इतना ही नहीं, मेरे शरीरमें आकर |
| भाव यह है कि जिनके तटपर जल, फल, | बसा है, मेरा जीवन चलाता है, सफेद रोटीका लाल खून |
| गूलादिके द्वारा जीवनयापन करनेवाले अहन्ता-ममतासे | (Blood) वहीं ही बनाता है न ? |
| हित शुद्ध चित्तवाले, सदाचारी विद्वानों, मुक्त पुरुषोंको | गंगामैया–जैसा पवित्र प्रेमप्रवाह प्रभुकी करुणा मेरे |
| वेशुद्ध मोक्षसुख करतलगत बिल्वफलके समान तुच्छ | शरीरमें बहती रहती है, यूँ दादाजी कहते हैं कि गंगा- |
| ातीत होता है अर्थात् जिनकी सन्निधिके समक्ष मोक्षसुख | जैसा पवित्र, प्रभुका प्रेमप्रवाह जिस शरीरमें सदा बहता |
| नी साधारण ही है, ऐसी उन अतुलनीया, निर्मला तथा | रहता है, अगर यह समझ मनमें दृढ़ हो गयी तो जीवनमें |
| ारंगमयी भगवती गंगाका सत्पुरुषोंके द्वारा सेवन क्यों | गंगा-स्नानका पावित्र्य आ गया समझो। |
| ाहीं किया जाता! | 'गम्यते प्राप्यते भगवत्पदं येन सा गङ्गा।' |
| गंगामाताका स्मरण हमें कई पवित्र महापुरुषोंकी | प्रभुका प्रेमप्रवाह मेरे साथ ही जुड़ा हुआ है, अगर यह |
| गद दिलाता है। पण्डितराज जगन्नाथजी गंगालहरीमें | समझ न आयी तो समझो कि जीवन पापसे भरा हुआ |
| जस तरहसे गंगामैयाका वर्णन करते हैं, उससे तो हृदय | है, फिर चाहे कितनी बार गंगास्नान क्यों न किया हो। |
| ार आता है। पण्डितजीके एक-एक शब्द और महिमा- | कई सांसारिक पुरुषोंने माँ गंगाके तटपर बैठकर |
| तुति हमारे दिलको छू लेते हैं— | जीवनकी परम शान्ति और मुक्ति पायी है, जीवनका |
| समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन् | लक्ष्य पाया है। कलः कल करके बहती माँ गंगा हमें |
| महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः। | सिखाती है कि जीवनमें शान्तिसे कर्मयोग करते रहो। |
| गंगालहरीके ऊपर पूज्य पाण्डुरंग शास्त्री आठवले | मेरी गोदमें आकर बैठनेवाले सभीको मैं शान्ति, शीतलता |
| पूज्य दादाजी)-ने अतिशय मधुर और जीवनस्पर्शी प्रवचन | और पावित्र्य प्रदान करती हूँ बिना आभार या |
| nई साल पहले दिये हैं, वे कहते हैं कि गंगा मतलब | धन्यवादकी अपेक्षा रखकर। |
| | |

साधन-सूत्र [जीवात्मासे परमात्मातककी यात्रा]

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

जाननेयोग्य दो विद्याएँ हैं—एक तो परा और दूसरी उपनिषदोंमें परब्रह्म परमेश्वरके स्वरूप, महत्त्व एवं

उसकी प्राप्तिके साधनोंपर विस्तारसे वर्णन किया गया अपरा। इस लोक और परलोकके भोगों और सुखोंकी जो विद्या जानकारी देती है, वह तो अपरा विद्या

है। जहाँ विविधताभरे नाम-रूपात्मक जगत्के आकर्षणमें जीवात्मा अपनेको भुला बैठता है, वहीं उपनिषद् हमें इस

नाशवान जगत्के नियन्ता अविनाशी परमतत्त्वकी ओर ले

जाते हैं, जो हमें पूर्ण आनन्द प्रदान करता है, जहाँ जीवको परम शान्तिकी प्राप्ति होती है तथा वह अपने

अंशीसे अभिन्न होकर आवागमनसे मुक्त हो जाता है। ऐसा ही एक उपनिषद् मुण्डक-उपनिषद् है, जिसका

शुभारम्भ अन्य उपनिषदोंकी भाँति शान्ति-पाठसे होता ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरेरङ्गेस्तुष्ट्वाःसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

भाव यह है कि गुरु और शिष्य मानवमात्रका कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओंसे प्रार्थना करते हैं कि हम अपने कानोंसे सदैव शुभ वचन ही सुनें; हम सदैव भगवान्की आराधनामें लगे रहें; हम नेत्रोंसे सदा शुभका ही दर्शन करें। हमारे शरीरका प्रत्येक अंग सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हो तथा हमारा जीवन भगवान्के काम आ

सके। सभी देवता हमपर कृपा करें तथा हमारे द्वारा प्राणिमात्रका कल्याण होता रहे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारके तापोंकी शान्ति हो। उपनिषदोंकी यह ब्रह्मविद्या ऋषियोंके मुखसे आगे

बढ़ती रही है। एक बार अट्ठासी हजार ऋषियोंके आचार्य महर्षि शौनक श्रद्धापूर्वक महर्षि अंगिराके पास

आये और उनसे जिज्ञासा व्यक्त की कि प्रभो! वह परम

तत्त्व क्या है, जिसे जान लेनेपर सब कुछ जाननेमें आ

अपरा विद्याके बारेमें महर्षि अंगिरा विस्तारपूर्वक

समझाते हैं कि ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनों वेदोंमें नित्यप्रति अग्निहोत्र करनेका विधान है, जिनके द्वारा पृथ्वीलोकसे लेकर सत्यलोकतकके सातों लोकोंके

होती हैं तथा मानव-शरीरमें केश, रोएँ और नख अपने-आप बढ़ते रहते हैं, उसी प्रकार परमात्माके संकल्पसे यह समस्त जगत् प्रकट होता है, पोषित होता है तथा प्रलय आनेपर उसी परमात्मामें समा जाता है। उस परमात्माको जान लेनेपर सब कुछ जान लिया जाता है।

कहलाती है तथा जिस विद्याके द्वारा अविनाशी परमात्माको

निराकार और सर्वव्यापक स्वरूपका विवेचन करते हुए तीन दृष्टान्तोंके माध्यमसे समझाते हुए कहते हैं कि जैसे मकड़ी अपने पेटसे जालेको निकालकर निगल जाती है;

जाना जाता है, वह परा विद्या है। ऋषि परमात्माके

पृथ्वीपर अनेक प्रकारकी औषधियाँ स्वतः ही उत्पन्न

| संख्या २] साधन इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ.इ. | 1-सूत्र ธรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรรร |
|---|--|
| यज्ञोंका फल नाशवान् होता है। भोगोंकी अवधि पूर्ण | बड़े ही सुन्दर रूपकका चित्रणकर जीवात्मा-परमात्माके |
| होनेपर पुन: संसारमें लौटना पड़ता है और नाना प्रकारके | सम्बन्धोंपर विवेचना की गयी है— |
| जन्मोंमें भटकना पड़ता है। इन सकाम कर्मोंमें रत लोग | द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। |
| विषयोंकी आसक्तिके कारण संसारमें सदैव दु:ख भोगते | तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नननयो अभिचाकशीति॥ |
| रहते हैं तथा मरणोपरान्त विभिन्न नरकों एवं शूकर- | समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचित मुह्यमानः। |
| कूकर, कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि विभिन्न योनियोंमें | जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥ |
| जन्मते-मरते रहते हैं। | एक साथ रहनेवाले तथा परस्पर सखाभाव रखनेवाले |
| किंतु इसके विपरीत जो मनुष्य-जन्मका महत्त्व जानते | दो पक्षी—जीवात्मा और परमात्मा एक ही शरीररूपी |
| हैं, वे इस शरीरके द्वारा ही अपने वर्ण, आश्रम तथा कर्तव्य- | पीपलके वृक्षका आश्रय लेकर रहते हैं। उन दोनोंमेंसे |
| धर्मोंका पालन करते हुए, संयमित और श्रद्धा-युक्त जीवन- | एक तो (जीवात्मा) उस वृक्षके सुख-दु:खरूप कर्म- |
| यापन करते हुए अविनाशी परम पुरुषको प्राप्तकर अपने | फलोंका आसक्ति–द्वेषपूर्वक स्वाद लेकर उपभोग करता |
| जीवनको सार्थक कर लेते हैं। उस परब्रह्म परमेश्वरकी | है किंतु दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ केवल देखता |
| प्राप्तिके लिये वैराग्यवान् जिज्ञासुको वेदोंको भली-भाँति | रहता है अर्थात् निर्लिप्त रहता है। जीवात्मा शरीरकी |
| जाननेवाले परमात्मामें स्थित गुरुके पास जाना चाहिये, जो | गहरी आसक्तिमें डूबा हुआ है तथा असमर्थतापूर्वक |
| उसे ब्रह्म-विद्याका उपदेश करे, जिसके द्वारा वह परब्रह्म | दीन-हीन अनुभव करता हुआ मोहित होकर शोक करता |
| परमात्माको जान ले। यह प्रथम मुण्डकका विवेचन है। | रहता है किंतु जब कभी भगवान्की कृपासे वह भक्तोंके |
| द्वितीय मुण्डकमें परब्रह्म परमात्माके स्वरूपके | द्वारा नित्य सेवित अपनेसे भिन्न उस परमात्माको और |
| बारेमें विस्तृत विवेचना की गयी है कि वह दिव्य पूर्ण | उनकी महिमाको जान लेता है तो वह सर्वथा शोकरहित |
| पुरुष निराकार, समस्त जगत्के बाहर-भीतर आकाशकी | हो जाता है तथा उस परमात्माके साथ एक हो जाता |
| भाँति व्याप्त, विकारोंसे रहित तथा अविनाशी जीवात्मासे | है। वह ज्ञानी भक्त सबके शासक, ब्रह्माके भी आदि |
| श्रेष्ठ है। अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, दिशाएँ, वायु, पृथ्वी | कारण, सम्पूर्ण जगत्के रचयिता, दिव्य प्रकाशस्वरूप, |
| इत्यादि एवं समस्त चराचर जगत् इसका विराट् स्वरूप | परम पुरुषको प्राप्तकर अपने समस्त पुण्य-पापरूप |
| है। उस परब्रह्मसे कैसे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है, | कर्मोंका नाश करके विशुद्ध-अन्त:करण होकर समता |
| इसपर प्रकाश डाला गया है। उस परब्रह्मकी प्राप्तिको | भावमें स्थित हो जाता है। |
| रूपकके माध्यमसे बताया गया है कि ओंकाररूपी | परमात्माको प्राप्त करनेके साधनके बारेमें उपनिषद्में |
| धनुषको धारण करके जीवात्मारूपी बाणके द्वारा परब्रह्म | कहा गया है कि वह परमात्मा सत्य-भाषणसे, तपसे |
| परमेश्वरके लक्ष्यको बेधा जा सकता है अर्थात् जीव | और ब्रह्मचर्यपूर्वक यथार्थ ज्ञानसे ही सदा प्राप्त होनेवाला |
| ओम्का एकाग्रतासे जप करते हुए परमात्माको प्राप्त कर | है। भोगोंमें आसक्त, मिथ्याभाषी, स्वार्थपरायण, अविवेकी |
| सकता है। संसारका चिन्तन परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक | व्यक्ति उस परमात्माका अनुभव नहीं कर सकते। वह |
| है। उस परमात्माको जान लेनेपर हृदयकी अविद्यारूपी | परमात्मा महान्, दिव्य और अचिन्त्यस्वरूप है तथा |
| गाँठ खुल जाती है, समस्त संशय कट जाते हैं तथा | सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर भी है। वह सर्वव्यापी होनेसे दूर भी है |
| शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं। | तथा हमारी हृदय-गुफामें रहनेके कारण निकट-से- |
| उपनिषद्के तृतीय मुण्डकमें दो पक्षियोंके दृष्टान्तद्वारा | निकट भी है। वह नेत्रोंसे, वाणीसे या अन्य इन्द्रियोंसे |

जाते हैं। ऐसे प्रयत्नशील शुद्ध अन्त:करणवाले साधक ग्रहण नहीं किया जा सकता, बल्कि उसे तो शुद्ध अन्त:करणमें ही निरन्तर ध्यान करते-करते देखा जा मरणकालमें शरीर त्यागकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं तथा सकता है। भोगोंकी कामनावाला सकामी व्यक्ति विभिन्न वहाँ परम अमृतस्वरूप होकर सर्वथा मुक्त हो जाते हैं। प्रकारके भोगोंको प्राप्त करता है तथा भोगोंसे अनासक्त ऐसी जीवात्मा अपने जड़ स्वरूपको त्यागकर समस्त व्यक्ति परमात्माको प्राप्त करता है। परब्रह्म परमात्मा कर्मोंसहित अविनाशी परब्रह्ममें लीन हो जाती है। जिस प्रवचनसे, बुद्धिसे, बहुत सुननेसे नहीं प्राप्त होता है प्रकार बहती हुई निदयाँ अपने नाम-रूपको छोड़कर समुद्रमें विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ऐसा ज्ञानी महापुरुष बल्कि मुमुक्षु व्यक्तिको, उसके लिये तीव्र अभिलाषा करनेवाले साधकको प्राप्त होता है; क्योंकि परमात्मा नाम-रूपसे रहित होकर उत्तम-से-उत्तम दिव्य परम पुरुष परमात्मामें विलीन हो जाता है। उन्हींको स्वीकार करके उनपर कृपादृष्टि डालता है। निर्बल, प्रमादी एवं असंयमी व्यक्ति परमात्माकी प्राप्तिके उपनिषद् अन्ततः इस सत्यका निरूपण करता है अधिकारी नहीं हो सकते। वह तो सतत साधनपरायण कि ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है, उसके कुलमें ब्रह्मको नहीं जाननेवाला नहीं होता, वह शोकसे साधकद्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उपनिषद् परमात्माको प्राप्त महापुरुषोंके महत्त्वका तर जाता है, पाप-समुदायसे तर जाता है तथा सब प्रकारसे संशयरहित होकर जन्म-मृत्युरहित हो जाता है। वर्णन करते हुए कहता है कि ऐसे ज्ञानी लोग परमात्माको साक्षात् करके ज्ञानसे तृप्त एवं परम शान्त इस प्रकार उपनिषद् हमें पूर्ण एवं सार्थक जीवनका हो जाते हैं तथा उस सर्वव्यापी परमात्मामें प्रवेश कर सन्देश देता है। आजके सत्संग (श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र 'जी) कहाँ चले? है, यह आप भी जानते हैं। 'सत्संग सुनने जा रहे हैं।' तीसरी बात-आप सत्संगमें जाकर करते क्या हैं? 'वहाँ क्या होगा?' माताएँ स्वेटर बुनती हैं। कहीं-कहीं सब्जी भी अमनिया 'एक छोकरी है। बड़ा सुन्दर गला है। खूब भजन करती हैं। कुछ श्रोता सोते हैं, कुछ सजावट देखते हैं, गाती है।' कुछ वक्ता या इधर-उधर बैठे लोगोंमें ताक-झाँक करते छोकरी न सही, कोई गायक, कथावाचक, वक्ता हैं। केवल सुनने—एकाग्र होकर सुनने कितने जाते हैं? भजनीक सही। जो सुनने जाते हैं, केवल वही श्रोता हैं। भीड़ कब और पहली बात-सत्संग सुननेकी वस्तु नहीं है, करनेकी वस्तु है, दूसरी बात—आप वक्ताके रूप, स्वर, लच्छेदार क्यों अधिक होती है, यह आप भी जानते हैं। भाषा, कथा-कहानी आदिसे आकर्षित हैं, अर्थात् चौथी और अन्तिम बात—सुनकर उठनेपर क्या मनोरंजन करने जाते हैं या सचमुच परमार्थको; भगवान्की, होता है? लोग वक्ताकी प्रशंसा करते हैं। उनके सत्य-सदाचारकी चर्चा सुनना आपको पसन्द है। इसकी प्रवचनकी युक्ति-प्रयुक्तिकी, स्वर-गानकी प्रशंसा करते आलोचना नहीं कर रहा हूँ। हैं या उनके दोषोंका वर्णन करते हैं। दोनोंमें कोई बात हो, सत्संग नहीं हुआ। सत्संग आजके कथा-कीर्तन, सत्संगमें कैसी भीड़ होती

| संख्या २] जन्मान्तरीय पुण्यकर्मोंसे सत्संगकी प्राप्ति २९ | | |
|---|--------------------|--|
| <u> </u> | *********** | ************************************** |
| न निन्दाको प्रेरित करता है, न स्तुतिव | हो; (जो निन्दा या | भक्तका संग भी कुसंग बन सकता है। |
| स्तुतिको प्रेरित करे) वह सत्संग न | हीं था। भले वह | संग अर्थात् आसक्ति, सत् अर्थात् श्रद्धा और यह |
| उत्तम कथा या श्रेष्ठतम प्रवचन है। | | श्रद्धा तथा आसक्ति करती क्या है? भगवान्ने गीतामें |
| सच्चा सत्संग | | बतलाया— |
| सत्संग आप किसे कहते हैं? | आप पूछेंगे। | 'यो यच्छ्द्धः स एव सः।' |
| सत्का अर्थ है परमात्मा औ | र संगका अर्थ है | जो जिसमें श्रद्धा करता है, वह वही है। उसीसे |
| आसक्ति। अतः सत्संगका अर्थ परम | ात्मामें आसक्ति। | अब उसका तादात्म्य है और आगे भी उसीमें उसे |
| तब भक्ति, प्रेम और सत्संगमें | अन्तर क्या है? | मिलना है। |
| यह प्रश्न स्वाभाविक है। यह स्म | एण रखनेयोग्य है— | आपकी श्रद्धा कहाँ है ? इसका उत्तर देनेसे पहले |
| 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।' | (नारदभक्तिसूत्र) | सोचिये कि आपको बनना क्या है? किसे पाना चाहते |
| भगवान् और उनके भक्तमें—म | हापुरुषमें कोई भेद | हैं आप? |
| नहीं है। सत्संग शब्दका मुख्य अर्थ य | ही है—महापुरुषमें | आपको निर्गुण निराकार अद्वय परमात्मबोध पाना |
| प्रेम। अब इसका दूसरा गौण अर्थ भी | है। जैसे आम फल | है तो आपको अयोध्या-वृन्दावनके रसिक सन्तोंमें |
| है, किंतु आम वृक्ष भी आम कहलात | । है। जैसे भक्तिका | आसक्ति करनेसे, उनकी बातें सुननेसे क्या मिलेगा? |
| अर्थ भगवान्में प्रीतिका होना है, रि | केंतु उस प्रीतिको | आपके लिये सच्चा सत्संग है, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, |
| उत्पन्न करनेका साधन—श्रवण, कीर्त | नि, अर्चन, वन्दन, | पंचदशी, अद्वैतसिद्धि आदिका अध्ययन और किसी |
| पादसेवनको भी भक्तिका साधन या र | प्राधन-भक्ति कहते | विरक्त वेदान्तनिष्ठमें दृढ़ श्रद्धा। |
| हैं, वैसे ही महापुरुषमें या भगवान्में | जो आसक्ति उत्पन्न | आपको श्रीराम या श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रीति |
| करे, उस कथा, प्रवचन, भजन, की | र्तिनको सुनने एवं | चाहिये तो आप ऊपर बतलाये ग्रन्थों तथा वैसे संतके |
| ग्रन्थोंको पढ़ने-पढ़ाने, सुननेका नाम | भी सत्संग है। | पास जाकर समय नष्ट क्यों करते हैं? आपको किसी |
| ऐसे सत्संगकी एक पहचान है | है—वह निन्दा या | भगवद्भक्त सन्तमें श्रद्धा करनी चाहिये और श्रीमद्भागवत, |
| प्रशंसाकी प्रेरणा नहीं देता। वह श्रोता | को मननकी प्रेरणा | श्रीरामचरितमानस-जैसे ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये। |
| देता है। सोचनेके लिये गम्भीर बना | ता है और उसके | भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरिहं भव संभव खेदा।। |
| हृदयमें 'सत्' के प्रति आसक्ति जगा | ाता है। | परम सत्य है यह, किंतु यह महापुरुषकी सिद्ध |
| ऐसा सत्संग सबके लिये सत्संग | नहीं होता। अपने | स्थिति है। साधन-पथके पथिकके लिये तो सच्चा |
| इष्ट, अपनी निष्ठा, अपने साधनमें जो | रिच उत्पन्न करे, | सत्संग चाहिये। अर्थात् अपने साधनके अनुकूल महापुरुषमें |
| वह सत्संग होता है। एक भक्तवे | न लिये वेदान्तके | उसकी दृढ़ आस्था-श्रद्धा और सचमुच आसक्ति होनी |
| उच्चकोटिके महापुरुषका संग भी कु | संग बन सकता है | चाहिये। यह है उसका सच्चा सत्संग। [श्रीकृष्णसन्देश] |
| और एक वेदान्तके साधकके लिये | किसी भगवत्प्राप्त | [प्रेषक—श्रीजनार्दनजी पाण्डेय] |
| | | ••• |
| जन्मान्तरीय पुण्यकर्मों से सत्संगकी प्राप्ति——— | | |
| भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्सङ्गमेव लभते पुरुषो यदा वै। | | |
| अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः॥ | | |
| बहुत जन्मके पुण्य-पुञ्जसे भाग्योदय होनेपर जब पुरुषको सत्संगकी प्राप्ति होती है, तभी अज्ञानकृत मोह | | |
| और मदरूपी अन्धकारका नाश करके विवेकका उदय होता है।[पद्मपुराण] | | |

कहानी-उतार-चढ़ाव (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) सारी बातोंकी जानकारी ली। जहाजका कराची वापस

उन्नीसवीं सदीके अन्तिम चरणकी बात है, कराचीके एक मध्यवर्गीय सिन्धी परिवारमें हरनाम नामका एक जाना सम्भव नहीं था। बालकपर कप्तानका स्नेह हो

बालक था। माँ बचपनमें ही मर चुकी थी। बापने प्रौढ़ावस्थामें फिरसे एक गरीब घरकी लड़कीसे विवाह

कर लिया। उसके दो सौतेले बहन-भाई भी हो गये थे। हरनामकी शादी-शुदा अपनी एक बड़ी बहन थी,

परंतु उसे कभी त्यौहारपर भी पीहर नहीं बुलाया जाता था। कभी-कभी छुपकर वह भाईकी पाठशालामें आती

और कुछ चीजें दे जाती। घरमें छोटे भाई-बहनके लिये विशेष अवसरोंपर नये कपडे और तरह-तरहकी मिठाइयाँ

बनतीं, परंतु हरनामको कोई भी नहीं पूछता। बेचारा बालक ललचाई आँखोंसे देखता रहता। कभी-कदाच वे दोनों इसे कुछ देना चाहते तो माँ उन्हें मना कर देती। एक दिन किसी साधारणसे कसूरपर विमाताने

हरनामको बहुत पीटा। पिता भी पत्नीके डरसे कुछ नहीं बोला। भूखा-प्यासा बच्चा घरसे भागकर समुद्र-किनारे

खड़े किसी भारवाही जहाजमें जाकर छिप गया। थोड़ी देर बाद, जब जहाज रवाना हुआ तो उसे

वस्तुस्थितिका भान हुआ और वह सुबक-सुबककर रोने लगा। परशियन ऑयल कम्पनीका जहाज था। ज्यादातर

मल्लाह अरबके थे, दो-चार ऑफिसर भी थे। जब

गया। उसने उसे अपनी केबिनमें रखा लिया। ईरान पहुँचकर कप्तानने उसे एक धनी ईरानी परिवारमें नौकर

रखवा दिया। हरनामकी बुद्धि कुशाग्र थी। थोडे दिनोंमें ही उसे अरबी, फारसी और अँगरेजी बोलनेका अच्छा अभ्यास हो गया।

उन दिनों, ईरानमें तेल कम्पनीके बहुत-से अँगरेज अधिकारी थे। परशियन ऑयल कम्पनीका बडा साहब

वहाँ ब्रिटेनकी तरफसे सर्वोच्च राजदूत भी था। एक दिन साहब और उसकी पत्नी टहलते हुए किसी अरबी शब्दके बारेमें बहस कर रहे थे। हरनाम उधरसे गुजर

रहा था। उसने क्षमा माँगते हुए विनयपूर्वक कहा कि मेम साहिबाका जुमला सही है। अब तो हरनामपर उन दोनोंकी पूर्ण कृपा हो गयी। उसे उन्होंके बँगलेमें रहने, खानेकी सुविधा मिल गयी।

हाथ-खर्चके लिये दो सौ रुपया महीना दिया जाने लगा। काम था, मेम साहिबाको अरबी और फारसी पढाना।

प्रथम महायुद्धमें ईरान मध्य-पूर्वका सप्लाई-केन्द्र बना। करोड़ों रुपये महीनेका सामान वहाँसे वितरण होने लगा। तेल कम्पनीका बड़ा साहब निदेशक नियुक्त हुआ।

अधिकांश सामानके वितरणका काम मिला हरनामदास एण्ड कम्पनीको। सन् १९१८ ई० तक हरनामदास करोड़पति सेठ बन गया। वहीं चार-छ: मुताह (कंट्रॉक्ट मैरिज या

अल्पकालीन विवाह) कर लिये। इन बीबियोंके अलावा उसके रंगमहलमें एक-से-एक सुन्दरी दासियाँ थीं। सैकडों नौकर-चाकर, मुनीम-गुमाश्ते घर और ऑफिसका काम

देखते, उसके दरवाजेपर अनेक अतिथि और प्रतिनिधि

आते रहते, सबका यथायोग्य आदर-सत्कार होता।

उन्होंने १२-१३ वर्षके एक अति सुन्दर बालकको इस संयोगसे, एक दिन एक भारतीय साधु घूमता हुआ स्र्यातिपांस्ता निंडजार्यक्रियाक्त ५स्११३३/विकायविषेवास्त्र जे भूरेने हिस्स्याति प्रियाति प्रियाति देशांक्रिक अस्ति अधिक खातिरदारी होनी स्वाभाविक ही थी। एक बहम्ल्य हाथ-घडी बची थी। महीनेतक किसी राजा-महाराजाका-सा आयोजन उनके घड़ी बेचनेके लिये दो-तीन दूकानोंमें गया। दूकानदार मेरी मैली वेश-भूषा और बढ़ी हुई दाढ़ी देखकर सन्देह लिये हुआ। विदाईकी दक्षिणामें कीमती शाल-दुशाले करने लगे कि शायद मैं घड़ी चुराकर लाया हूँ। केवल तथा अच्छी रकम नकद दी गयी। पन्द्रह वर्षके लम्बे समयके बाद, एक साधु पचास-साठ रुपयेतक देनेको तैयार हुए। मैंने क्रोधमें महाराज हरिद्वारके पास मुनिकी रेतीमें एक बड़े-आकर घडीको समुद्रमें फेंक दिया। पकौड़ीकी दुकानपर खड़े होकर दुकानदारको बड़े जगह-जगह मजदूरी करता हुआ, संयोगसे यहाँ ध्यानसे देख रहे थे। महाराजको प्रेमसे नाश्तेका निमन्त्रण आकर बड़े-पकौड़ीकी यह दुकान कर ली। थोड़े मिला। पहलेसे ही चार-पाँच संन्यासी प्रसाद पा रहे थे। दिनोंतक तो मनमें संताप रहा, फिर एक दिन एक महात्मा दुकानपर ग्राहकोंकी अच्छी भीड़ थी। आये। उनका उपदेश था, 'बच्चा! धन और मानमें सच्चा दुकानदारने पूछा—'महाराज! आप इतने ध्यानसे सुख नहीं है। ईश्वरके बन्दोंकी सेवा करो, शान्ति मुझे क्यों देख रहे थे?' मिलेगी।' तबसे महात्माओंको प्रसाद देकर जो बच जाता संन्यासीने पन्द्रह वर्षों पहलेके ईरान-प्रवासकी है, उसीसे दो जूनकी खुराक आरामसे मिल जाती है। अपनी कहानी सुनाकर कहा कि सेठ हरनामदासका सुबह ६ बजेसे लेकर रातके १२ बजेतक मेहनत करनेसे चेहरा आपसे एकदम मिलता-जुलता है। शरीर स्वस्थ रहता है और मन भी नाना चिन्ताओंसे मुक्त है। भगवती गंगाका तट है और साधु-महात्माओंका जब उन्हें पता चला कि वे उस हरनामदाससे ही बातें कर रहे हैं तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। संग-लाभ; सचमुच, बहुत आनन्दमें हूँ। संन्यासीने प्रसाद पाकर हरनामदासको प्रणाम किया जो कहानी उन्हें सुनायी गयी, वह इस प्रकार थी-आपके चले जानेके एक वर्ष बाद बड़े साहबका और कहा कि वास्तवमें ही आप सुख-दु:खके समदर्शी-तबादला हो गया और छोटे साहबने काम सँभाला। मैंने समभोगी हैं। कभी उसकी परवाह नहीं की थी, इसलिये वह और सन् १९६१ ई० में हरनामदासकी मृत्यु हुई। मेरे उसके मुँहलगे दोस्त एवं कर्मचारी मुझसे जलते रहते थे। मित्र स्वर्गीय श्रीराम शर्मा (सम्पादक, विशाल भारत)-कुछ ही दिनों बाद मुझपर जालसाजीका मुकदमा के घरपर एक-दो बार उनसे मुलाकात हुई थी। गरीबी चलाया गया, जिसकी सजा होती मौत। होनेपर भी आदतें पहले-जैसी ही थीं। एक-दो कम्बल जल्दीसे व्यवस्था करके, मुनीमोंको काम सँभलाकर या कोट पासमें होता तो वे किसी जरूरतमन्दको दे देते। में चार-पाँच लाखकी सम्पत्ति लेकर, अपने सचिवके कई दिनोंतक कड़ाकेकी सर्दी भुगतनेके बाद सम्भव साथ ईरानसे छद्मवेशमें रवाना हुआ। रास्तेमें मेरा सचिव होता तो फिर कोट बनवा पाते, परन्तु कभी उनके सन्दुक लेकर न जाने कहाँ उतर गया। मैं जब बम्बई चेहरेपर दीनताके भाव नहीं दिखायी दिये। बन्दरगाह पहुँचा तो मेरे पास थोड़े-से रुपये और एक [प्रेषक — श्रीनन्दलालजी टांटिया] -लक्ष्मी गुणवान्के पास जाती हैं: श्रियः कुर्यात् पलायिन्या बन्धाय गुणसंग्रहम् । दैत्यांस्त्यक्त्वाश्रिता देवा निर्गुणान्सगुणाः श्रिया॥ चंचल लक्ष्मीको बाँधनेके लिये गुणोंका संग्रह करना चाहिये। गुणहीन हो जानेके कारण दैत्योंको छोड़कर लक्ष्मी गुणवान् देवताओंके पास चली गयीं।[क्षेमेन्द्र]

लक्ष्मी गुणवानुके पास जाती हैं

संख्या २]

गंगावतरण (डॉ० श्रीकमलाकान्तजी शर्मा 'कमल', एम०ए०, पी-एच० डी०) अच्युतचरणतरङ्गिणि शशिशेखरमौलिमालतीमाले। कण-कणमें शक्ति और भक्तिकी अप्रतिम कथाएँ साकार हुई हैं—ऐसे महनीय देशकी विशेषताओंको कुछ शब्दोंमें

मम तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता॥ हे विष्णुपादनन्दिनि! हे गंगाधर श्रीशंकर महादेवके बाँध लेना सहज सम्भव नहीं होता।

शिरकी मालती-माला माता गंगे! आप जिस समय मुझे

स्नानके फलको प्रदान करें; उस समय मुझे महादेव बनाना, भगवान् विष्णु नहीं; क्योंकि विष्णु बननेपर आपका निवास पैरोंमें रहेगा, जो मुझे कृतघ्नभाववश

स्वीकार नहीं और शंकर बननेसे आप मेरे सिर (माथे)-

पर विराजेंगी, परिणामत: मैं आपके प्रति कृतज्ञ हो सकूँगा। शस्यश्यामल भारतवर्ष, अनेकतामें एकताका उद्घोष करनेवाला धर्मप्राण देश, न केवल व्यक्ति अपितु समष्टिके

कल्याणका आकांक्षी भारत देश अपनी विशिष्टताओंके आधारपर आजसे नहीं, धुर पुरातन कालसे समूचे भूमण्डलपर जाना जाता रहा है। भौगोलिक दृष्टिसे भी उस परब्रह्म ठाकुरने बहुत उदारताके साथ इस देशको

सँवारा-सजाया है। हिमगिरि नगराज हिमालय इसके माथेपर मुकुटकी भाँति शोभित है तो इसके चरण-प्रक्षालनहेत् रत्नाकर सागर अहर्निश सेवारत है। जिसकी

चारों दिशाओंमें श्रीहरि (विष्णु) और श्रीहर (महादेव) क्रमशः जगन्नाथपुरी, द्वारका, केदार और रामेश्वरम्के रूपमें स्वयं विराजते हैं तो कल-कल करती पावन

शीतलसलिला सरिताएँ इस देशके सम्पूर्ण आन्तरिक परिवेशका पोषण करती हुई नित नूतन ऊर्जा और क्षमता

प्रदान करती हैं। जिस देशमें वनस्पतिमें भी भगवद्दर्शनकी अद्भृत भावधारा विद्यमान हो, उस धरापर सुशोभित

वनाच्छादित पर्वत-पठार, घाटियाँ, स्वर्णकणोंकी भाँति चमकता मरुप्रदेश, वन-अरण्य, अनेकविध पश्-पक्षी, खनिज सम्पदासे परिपूर्ण रत्नगर्भा वसुन्धरा तथा समूचे विश्वके प्रति कल्याणकारी भावनाओंसे भावित अनुप्राणित

जन समुदाय—सचमुच यह देश विशिष्ट है, अभिनन्दनीय

है और प्रणम्य है, इसलिये कि इस देशकी धरतीके

गंगाकी महत्ताको महती ऊँचाई प्रदान की है।

किया है—

पुराणोंके अनुसार गंगा एक पुण्यसलिला सरिताका नाम है, जहाँ गंगाको एक भगवती देवीके रूपमें वर्णित

किया गया है। विष्णुपदी, मन्दाकिनी, सुरसरि, देवगंगा, जाह्नवी एवं हरिनदी गंगाके ही पर्यायवाची नाम हैं। वेदोंमें भी गंगाका उल्लेख मिलता है।

और-तो-और जिस भूतलपर स्वयं जगदीश्वर,

एक नहीं अनेक बार विभिन्न अवतारोंके माध्यमसे

स्वधाम (वैकुण्ठ)-को छोड़कर पदार्पण करता रहा है,

उस देशकी पावन धराका गुणगान क्या इतना सहज है ?

गंगा, यमुना, कावेरी, कृष्णा, गोमती, गोदावरी, गण्डक,

ब्रह्मपुत्र, नर्मदा-जैसी नित्यनीरा नदियाँ अपनी वन्दनीय

उपस्थितिसे जिस देशको धन-धान्य-सम्पदासे परिपूरित

करती रहती हैं, उस देशकी महिमापूर्ण गौरव-गाथाको

वर्णित-विश्लेषित करना वस्तुत: सहज और सरल नहीं;

क्योंकि अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक श्रीहरिने कृष्णावतारके

समय महाभारतके रणांगणमें गीताका उपदेश करते हुए

गाण्डीवधारी अर्जुनको अपनी सार्वभौमिक और शाश्वत

उपस्थितिका संकेत करते हुए स्वयं अपनी सत्ता (विद्यमान स्थित)-को इस देशके सन्दर्भमें अनेकविध रेखांकित

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।

झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी॥

श्रीहरिने 'स्रोतसामस्मि जाह्नवी' कहकर पतितपावनी

गंगामें अपनी ही विद्यमानता सिद्ध करते हुए

(गीता १०।३१)

[भाग ९०

यत्र गङ्गा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती। यत्र सोमेश्वरो देवस्तत्र माममृतं कृधि॥

| संख्या २] गंगाव | |
|---|---|
| ************************************** | |
| जहाँपर गंगा, यमुना एवं प्राची दिशावाहिनी सरस्वती | पत्नी एवं भीष्मकी माता भी कही गयी हैं। |
| तथा सोमनाथ महादेवजी हैं, उस स्थानमें मुझको सदा | पृथ्वीपर गंगावतरणकी कथा इस प्रकार है—महर्षि |
| वासद्वारा मरण—मुक्ति प्रदान कीजिये और भी कहा गया | कपिलमुनिके शापवश महाराज सगरके साठ हजार पुत्र |
| है कि 'सितासिते सरिते' [श्वेत एवं कृष्णवर्णा गंगा | भस्मीभूत हो गये थे, अपने पूर्वजोंके मोक्षहेतु उनके |
| यमुना]-का 'यत्र सङ्गथे' [जहाँ संगम] होता है, | वंशजोंने गंगाको पृथ्वीतलपर लानेके निमित्त घोर तपस्या |
| वहाँपर जो लोग 'आप्लुतासो' [स्नान] करते हैं, वे | की, अन्तत: महाराज भगीरथकी तपस्यासे भगवान् ब्रह्मा |
| 'दिवमुत्पतन्ति' अर्थात् इस लोकसे ऊर्ध्व (स्वर्ग) | प्रसन्न हुए, उन्होंने गंगाको पृथ्वीपर ले जानेकी आज्ञा |
| लोकको प्राप्त होते हैं। | प्रदान की, किंतु ब्रह्मलोकसे अवतरित होनेवाली गंगाके |
| गंगाकी उत्पत्ति एवं स्थितिविषयक दो कथाएँ | विकट प्रवहमान वेगको सहन करनेमें पृथ्वी सर्वथा |
| विशेष रूपसे प्रचलित है— | असमर्थ थी, अत: भगीरथने भगवान् शिवकी आराधना |
| प्रथम —गंगाकी उत्पत्ति श्रीहरि (विष्णु)-के चरणोंसे | करके गंगाके प्रवाहपूर्ण अवतरणको अपनी जटाओंमें |
| हुई है, एक मान्यताके अनुसार ब्रह्माने इसे अपने | धारण करनेकी प्रार्थना की, इस प्रकार ब्रह्माके कमण्डलुसे |
| कमण्डलुमें एकत्रित कर लिया, कहा जाता है कि | निकलकर गंगा शिवकी जटाओंमें रम गयीं। बादमें जह्नु |
| वामनावतारके समय भगवान्ने जब विराट्रूप धारण किया | ऋषिके यज्ञकी सामग्री गंगाके प्रवाहवश नष्ट हो जानेके |
| तो उनके ब्रह्माण्डको भेदते ऊपर उठे चरणका प्रक्षालनकर | परिणामस्वरूप ऋषि गंगाका पान कर गये और गंगा |
| ब्रह्माने उस जलको अपने कमण्डलुमें रख लिया। एक | जह्नु ऋषिके उदरस्थ हो गयीं। महाराज भगीरथकी |
| अवान्तर व्याख्यानुसार सम्पूर्ण आकाशमें स्थित मेघका | अनुनय-विनयपूर्ण प्रार्थनासे ऋषि द्रवित हो गये और |
| ही पौराणिक 'विष्णु' अर्थ करते हैं, मेघसे वृष्टि होती | गंगाको पुन: अपनी जंघासे प्रवाहित किया और तभीसे |
| है और उसीसे गंगाकी उत्पत्ति मानी गयी है। | गंगा जाह्नवीके नामसे भी जानी जाने लगीं। आगे-आगे |
| द्वितीय—गंगाका जन्म हिमालयकी आत्मजाके | चलते हुए महाराज भगीरथ गंगाको अपने पूर्वजोंके |
| रूपमें मैनाके गर्भसे हुआ था, किसी कारण-विशेषसे गंगा | भस्मीभूत देह-स्थानतक ले गये और पूर्वजोंको मुक्ति |
| ब्रह्माके कमण्डलुमें अवस्थित हो गयीं। देवीभागवतके | दिलायी। भगीरथकी अथक–अकथनीय तपस्यासे गंगाका |
| अनुसार लक्ष्मी, सरस्वती एवं गंगा—तीनों नारायणकी | पृथ्वीपर अवतरण हुआ, इसीलिये गंगा भागीरथीके |
| पत्नियाँ है। पारस्परिक कलह और वैमनस्यवश उन्होंने | नामसे भी जानी जाने लगीं। |
| एक-दूसरेको शाप देकर नदीरूपमें अवतरित होकर | भगवती गंगाका भूतलपर आविर्भाव— |
| भूलोकमें निवास करनेहेतु बाध्य कर दिया था। | ब्रह्मपुराणान्तर्गत ब्रह्मा और महर्षि नारदके संवादमें तथा |
| यही कथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें भी | स्कन्दपुराणमें भगवान् शंकर तथा स्कन्दके संवाद- |
| प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी, सरस्वती एवं गंगा—ये तीनों विष्णु | सन्दर्भमें भगवान् श्रीहरिके त्रिविक्रमावतार (वामनावतार)- |
| भगवान्की पत्नियाँ हैं, इनके पारस्परिक कलहसे सरस्वतीके | के समय ब्रह्माजीने अपने कमण्डलुके जलसे परमात्माके |
| शापसे लक्ष्मी पद्मावती नामक नदी एवं तुलसी नामक | चरण-कमलोंमें सादर अर्घ्य प्रदान किया था, वही जल |
| पादपरूपमें अवतीर्ण हुई, गंगाके शापसे सरस्वती भी | मेरुपर्वतपर गिरकर चारों ओर प्रवाहित हुआ, उसमेंसे |
| नदीरूपमें धरापर अवतीर्ण हुई तथा सरस्वतीके शापवश | जो जल दक्षिण दिशाकी ओर गिरा, उसको भगवान् |
| गंगा भी नदीरूपेण अवतरित हुई। | शंकरने अपनी जटाओंमें क्रमशः वाम एवं दक्षिण दो |
| पुराणोक्त कथनानुसार गंगा महाराज शान्तनुकी | भागोंमें विभक्तकर स्थापित कर लिया, उसी जलका |

एक भाग जो कि दक्षिण अंशमें स्थित था, वह कीर्तित गंगा पाप दूरकर पवित्र करती है और गौतमजीने तपश्चर्याकर भगवान् महादेवसे प्राप्त किया दर्शित गंगा मंगल प्रदान करती है, जबकि स्नान एवं पान करनेसे गंगा सात कुलपर्यन्त मनुष्योंको पवित्र तथा जो अंश उत्तरकी ओर था, वह महाराज भगीरथने तपश्चर्याकर भगवान् आशुतोषसे प्राप्त किया। फलतः करती है। पहलेका नाम गौतमी गंगा एवं गोदावरी है तथा स्कन्दपुराणान्तर्गत काशीखण्डके अनुसार एवं दूसरेका नाम भागीरथी गंगा और जाहनवी है। साथ ही महाभारतान्तर्गत वनपर्व ८५वें अध्यायके ९०वें श्लोकमें जो जल ब्रह्माजीके कमण्डलुमें था, वह भी पार्वतीके वर्णित— साथ विवाहके समय महादेवने अभिमन्त्रितकर कमण्डल्में सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम्। रखकर ब्रह्माजीको प्रदान किया था एवं भगवान् शिवके द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गङ्गा कलियुगे स्मृता॥ संगीतको सुनकर द्रवीभूत श्रीराधाकृष्णरूप जो जल था, के अनुसार सत्ययुगमें सभी पुण्यजनक एवं उसे भी ब्रह्माजीने अपने कमण्डलुमें सन्धारित कर त्रेतामें विशेषत: पुष्कर तथा द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा लिया-इसीसे गंगाजीका एक नाम 'ब्रह्मद्रव' भी कहा कलिकालमें विशेषतः गंगाजीको पुण्यजनक कहकर गया है। इस प्रकार गंगाजलमें तीनों देवताओं [ब्रह्मा, भगवती गंगाके वैशिष्ट्यको प्रतिपादित किया गया है। विष्णु और महेश]-का सम्बन्ध होनेसे इसको 'त्रिदेवत्व' पृथ्वीपर भगवती गंगाका नित्य निवास है— नामसे भी जाना गया है और यह अतिपावन, सर्वजन-यावद् धरण्यां तुलसी प्रपूज्यते कल्याणकारी गंगोदक सर्वोत्तम एवं सर्वसेवनीय कहा गुरुर्नभस्थो दिवि कल्पपादपः। गया है। यावत्समुद्रे बडवानलश्च आजकल गंगाको लेकर बहुत हलचल है। गंगाकी वसामि तावत् तव चक्रखाते॥ शुद्धि, गंगाकी मौलिकताकी रक्षा, नमामि गंगे-जैसी स्वयं भगवती गंगा स्वमुखसे भगीरथ महाराजको योजनाओंकी गूँज, गंगामें अनेक प्रकारके अपशिष्ट आज्ञा प्रदान करती हैं—हे भगीरथ! जबतक पृथ्वीपर पदार्थोंकी रोकथामहेत् करोडों रुपयोंकी योजनाएँ, कुल तुलसीका पूजन, आकाशमें गुरु, स्वर्गमें कल्पवृक्षकी मिलाकर गंगाके विषयको लेकर प्राय: आन्दोलनोंकी स्थिति रहेगी तथा समुद्रमें बड़वाग्निकी स्थिति रहेगी, चर्चा सुनायी देने लगी है, केन्द्रीय सरकारने तो एतदर्थ तबतक मैं (गंगा) तुम्हारे चक्रखातमें निवास करूँगी। पृथक्से पूरा विभाग और मन्त्रीतककी नियुक्ति की है, अन्तमें गंगाके मूल्य एवं महत्त्वको विश्लेषित प्रश्न यह है कि वस्तुत: पुण्यसलिला देवसरिता गंगा क्या करना तो सरल और सहज नहीं होगा, तथापि इतना अपने 'अभंग, तरंगशील प्रवहमान स्वरूपद्वारा दर्शन, कथन ही समुचित होगा कि— पान, स्नान-स्तवनशीलजनोंके पापपुंजका उन्मूलनकर न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः। उन्हें पुण्यभाजन करेगी या यह भी अन्य आस्थावान् ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥ धर्मस्थानोंकी भाँति अपनी पापमोचिनी क्षमता, सामर्थ्य, (महाभारत, तीर्थयात्रापर्व ८५।९६) शक्ति और नैसर्गिकताको त्यागकर लाखों-करोडों मनुष्योंको गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं, केशवके समान आहत दु:खित करेगी।' कोई श्रेष्ठ देव नहीं, ब्राह्मणोंके समान कोई श्रेष्ठ पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति। मनुष्य नहीं। इस प्रकार गंगा अद्भुत हैं, अनिर्वचनीय आनन्द एवं मंगलप्रदायिनी हैं तथा वर्णनातीत पावन अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥ Hinduism Discord Serveनभक्तिङ्गालिङ्मालिङ्गालिङ्यालिङ्गालिङ्गालिङ्गालिङ्गालिङ्गालिङ्गालिङ्गालिङ्गालिङ्गालिङ्गालिङ

भाग ९०

संतकी दुर्लभता और महत्ता (श्रीभँवरलालजी परिहार)

संतकी दुर्लभता और महत्ता

भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तकी प्रशंसा करते हुए तो किसी भी लेखनीमें है ही नहीं, तथापि भगवान्के ऐसे

प्यारे भक्तों-सन्तोंके स्मरणसे हमारे मन-बृद्धि पवित्र हो कहते हैं-

जाते हैं, इस दृष्टिसे यत्किंचित् लिखनेका प्रयास किया न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।

न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नेवात्मा च यथा भवान्॥ जाता है।

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वेरं समदर्शनम्।

संख्या २]

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूर्ययेत्यङ्घिरेणुभिः॥ (श्रीमद्भा० ११।१४।१५-१६)

हे उद्भव! मुझे तुम्हारे-जैसे प्रेमी भक्त जितने

प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर, संगे

भाई बलरामजी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है। जिसे किसीकी भी अपेक्षा नहीं,

जो जगत्के चिन्तनसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तनमें तल्लीन रहता है और राग-द्वेष न रखकर सबके

प्रति समान दृष्टि रखता है, उस महात्माके पीछे-पीछे में निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी

धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।

भगवानुके प्यारे संत-भक्तकी महिमा समझनेके

लिये भगवानुके उपर्युक्त वचन पर्याप्त हैं। इससे अधिक

सम्पूर्ण भूमण्डलके मनुष्योंको चार श्रेणियोंमें विभाजित किया जा सकता है—१. संत, २. साधक, ३. विषयी तथा

४. पामर। संतका तात्पर्य है भगवत्साक्षात्कारसे सम्पन्न भगवानुका अनन्य प्रेमी भक्त। साधक वह है, जो

भगवत्प्राप्तिके लिये साधनामें संलग्न है। संसारके भोगोंमें फँसे हुए और विषय-भोगप्राप्तिको ही अपने जीवनका

उद्देश्य समझनेवाले लोग विषयी हैं। पामरकी गणना अत्यन्त निकृष्ट मनुष्योंमें की जाती है, जो विषय-भोगोंकी प्राप्तिक लिये किसी भी पाप-कर्मको करनेमें हिचकिचाते नहीं हैं।

यह बड़ी ही विलक्षण बात है कि भगवान्ने स्वयंको सुलभ बताया है—'तस्याहं सुलभः पार्थ' (गीता ८।१४); किंतु अपने भक्तको दुर्लभ ही नहीं, बल्कि

सुदुर्लभ बताया है—'स महात्मा सुदुर्लभः' (गीता ७। १९) । भगवान्को तत्त्वसे जाननेवाला महापुरुष कोई

बिरला ही होता है, यह बात स्वयं भगवान्ने कही है-मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यति सिद्ध्ये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ (गीता ७।३)

हजारों मनुष्योंमें कोई एक ही मनुष्य मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक ही पुरुष मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे

अर्थात् यथार्थ रूपसे जानता है। देवर्षि नारदने भी कहा है कि ऐसे संत-महापुरुषोंका

संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है—'महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽ-गम्योऽमोघश्च।' (भक्तिसूत्र ३९)

संत-महात्माओंका मिलना बहुत ही दुर्लभ है। यदि कोई कुछ कह भी नहीं सकता और लिखनेकी शक्ति कहीं ऐसे संत मिल भी जायँ तो उनको पहचानना बहुत

कठिन है; परंतु यदि भगवान्की अहैतुकी कृपासे ऐसे संत ऐसी अनहोनी घटनाएँ भी होती रहती हैं। तुलसीदासजी मिल जाते हैं 'बिनु हरिकृपा मिलिहं निहं संता।' तो महाराजके आशीर्वादसे मुर्देका जीवित हो जाना एवं उनका मिलना कभी व्यर्थ नहीं जाता; क्योंकि वह अमोघ मीराबाईके लिये विषका अमृत हो जाना प्रसिद्ध ही है, होता है। परंतु संतका वास्तविक चमत्कार है उसका दिव्य भगवत्प्रेम,

मिल जाते हैं 'बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता।' तो उनका मिलना कभी व्यर्थ नहीं जाता; क्योंकि वह अमोघ होता है।

संतनामधारी पुरुष तो बहुत मिल जायेंगे, किंतु सच्चे संत सभी युगों-कालोंमें दुर्लभ होते हैं। आजके इस दाम्भिक युगमें जहाँ स्वयंको संत, राष्ट्रसंत और विश्वसंत प्रदर्शित-घोषित करनेकी होड़ लगी हुई है, वहाँ प्रतिक्षण-वर्द्धमान, परमलोभनीय, परमदुर्लभ भगवत्प्रेमसे आप्लावित सच्चे संत-भक्तको पहचानना तो और भी कठिन है। कोई पारखी, पैनी नजर ही उस हीरेको पहचान सकती है—

हीरा पड़ा बाजार में रही छार लिपटाय।
बहुतक मूरख चले गये पारख लियो उठाय॥
सांसारिक लोगोंकी बुद्धिके तराजूपर सच्चे संत वैसे ही नहीं तुल सकते, जैसे पत्थर तोलनेके तराजूपर हीरा

नहीं तुल सकता।

'संतत्व' क्या है ? यह संसारकी सम्पूर्ण आसक्ति—

ममता–कामनासे परिमुक्त एक परम विशुद्ध व्यक्तित्वका

वाचक है, जिसकी दृष्टिमें एक भगवान्के अतिरिक्त अन्य

किसीका कोई अस्तित्व नहीं है—'जित देखों तित स्याममई

है।' क्लेशकी आत्यन्तिक निवृत्ति होनेपर ही संतत्वकी

अभिनिवेश—ये पाँच क्लेश हैं (योगदर्शन २।३)। इन क्लेशोंकी निवृत्ति हुई है या नहीं—यह स्वयंवेद्य है, इसको कोई दूसरा नहीं जान सकता है। यद्यपि नाटकमें जिस प्रकार कोई अभिनेता चैतन्यमहाप्रभु, मीराबाई आदि सन्तोंका सफल अभिनय कर सकता है, वैसे ही वास्तविक जीवनमें

प्राप्ति होती है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और

सफल अभिनय कर सकता है, वैसे ही वास्तविक जीवनमें भी कोई चालाक व्यक्ति स्वयंको संत बतानेमें सफल हो सकता है तथापि नकली एवं वास्तविकमें जमीन–आसमानका अन्तर होता है। संतके जीवनमें किसी चमत्कारकी खोज हैं। दुर्वासा-अम्बरीष-उपाख्यानमें यह बात स्पष्ट हो चुकी

के प्रणायान्ने कहा है—

साधवो हृदयं महां साधूनां हृदयं त्वहम्।

मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागिष॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६८)

भोगोंके प्रति उसकी तीव्र विरक्ति और दैवी-सम्पदा (गीता

१६।१-३)-के गुणोंसे सुवासित उसका शास्त्रानुकूल

आदर्श, अनुकरणीय जीवन। भगवान् अपने ऐसे भक्त-

संतसे इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे अपने भक्तके

अतिरिक्त किसी अन्यको पहचाननेसे भी इनकार कर देते

भाग ९०

भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमीभक्तोंका हृदय स्वयं मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता। भगवान्ने स्पष्ट कहा है कि मैं सर्वथा अपने

दुर्वासाजी! मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी-

भक्तोंके अधीन हूँ, मुझमें तिनक भी स्वतन्त्रता नहीं है— '**अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।'** (श्रीमद्भा० ९।४।६३) भगवान्के ऐसे प्यारे भक्तोंके लिये

या अपेक्षा करनेवाले लोग संतत्वके बारेमें कुछ समझते- भगवत्कृपाके बलपर कुछ भी करना असम्भव नहीं है। जानते ही नहीं हैं। चमत्कार एक तुच्छ वस्तु है; किंतु श्रीहनुमान्जीद्वारा सोनेकी लंका जलाया जाना एवं उनके संतोंके जीवनमें भगवान्की अहैतुकी कृपासे कभी-कभी एक मुक्केसे त्रिलोकविजयी रावणके मूर्छित हो जानेकी

| संख्या २] संतकी दुर्ल | नता और महत्ता ३७ |
|---|---|
| ******************************** | ************************************** |
| घटनाएँ इसकी साक्षी हैं। | संतत्वकी प्राप्ति भगवान्की कृपासे ही होती है। |
| संत स्वयं भगवन्मय होते हैं तथा समग्र चराचर | कोई भी व्यक्ति अपने पुरुषार्थसे इस महनीय पदको प्राप्त |
| जगत्को भगवन्मय देखते हैं। अपने सम्पूर्ण कर्मोंसे | नहीं कर सकता। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने |
| भगवान्की सेवा करना ही उनका जीवनव्रत होता है | संत-स्वभावकी प्राप्तिके लिये भगवान्से याचना करते |
| सबमें भगवान्, सब रूपोंमें भगवान्—यही उनका मुख्य | हुए लिखा है— |
| उपदेश होता है। ऐसे सन्तोंको 'सचल वृन्दावन' कहें | कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो। |
| तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि उनके मन, | श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो॥ |
| बुद्धि, चित्त, अहंकारपर पूर्णरूपसे भगवान्का ही अधिकार | (विनय-पत्रिका १७२) |
| हो जाता है। वहाँ निरन्तर भगवान्की नित्यलीला चलती | ऐसे भगवत्संगी, भगवत्प्रेमी संत-भक्तके लवमात्रके |
| रहती है। वृन्दावन क्या है ? भगवान्की नित्य लीलास्थली | सत्संगकी तुलना स्वर्ग एवं मोक्षसे भी नहीं की जा सकती; |
| फिर ऐसे संत और वृन्दावनमें क्या अन्तर है? | फिर मनुष्योंके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है— |
| आश्चर्यकी बात है कि संतका संतत्व स्वयं संतसे | तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। |
| ही छिपा रह जाता है। किसीके कहने या घोषित करनेपर | भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिष:॥ |
| भी वे अपना संतत्व कभी भी स्वीकार नहीं करते। मान- | (श्रीमद्भा० १।१८।१३) |
| बड़ाई-प्रतिष्ठा, कीर्ति, सुयशकी वासना उनको छूतक | संतके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह |
| नहीं सकती। सर्वथा संगोपनप्रिय होनेके कारण उनको | शास्त्रोंका ज्ञाता, विद्वान् भी हो; यद्यपि कहीं-कहीं यह |
| बाहरी लक्षणोंसे पहचाना नहीं जा सकता। सन्तोंके सभी | मणिकांचनयोग भी देखनेको मिलता है। इसी प्रकार यह |
| लक्षण प्राय: स्वयंवेद्य होते हैं तथापि शास्त्रोंमें यत्र-तत्र | भी आवश्यक नहीं है कि संसारके लोग उसको संत |
| उनका विपुलमात्रामें वर्णन हुआ है। भगवान्ने गीताके | मानते हों। संसारके लोग जिनको संत मानते हैं, उनमें |
| बारहवें अध्याय (श्लोक १३-१९)-में संत-भक्तोंके | सच्चा संत वास्तवमें कोई बिरला ही होता है। इसीलिये |
| लक्षण विस्तारपूर्वक बताये हैं। इसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमे | किसी अनुभवी व्यक्तिने कहा है— |
| भी सन्तोंके लक्षणोंका वर्णन जगह-जगह हुआ है | लाखों में मिले नहीं, करोड़ों में जोय। |
| भगवान् सन्तोंके लक्षण बताते हुए कहते हैं— | अरबों-खरबों में मिले, एक या दोय॥ |
| बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर। | संतको दुर्लभ बतानेका तात्पर्य यह नहीं है कि संत |
| सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी। | बनना बहुत ही कठिन है। वास्तविक बात यह है कि |
| कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया। | संसारके अधिकांश मनुष्य विषय-भोगोंमें ही परमसुख |
| सबिह मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी। | मानकर उन्हींमें फँसे रहते हैं। कोई बिरला भाग्यशाली |
| बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन। | व्यक्ति ही विषय-भोगोंको तुच्छ, सारहीन समझकर और |
| सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री। | उनको ठोकर मारकर भगवत्प्राप्तिके लिये सच्चे हृदयसे |
| ए सब लच्छन बसिंह जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर। | प्रयास करता है। आजतक जितने भी संत हुए हैं और |
| सम दम नियम नीति निहं डोलिहं। परुष बचन कबहूँ निहं बोलिहं। | जिनको भगवत्प्राप्ति हुई है, वह भगवान्की कृपासे ही |
| निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज। | हुई है। भगवान्की अहैतुकी कृपा सभी मनुष्योंपर |
| ते सञ्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुखपुंज॥ | समानरूपसे बरस रही है। अत: कोई भी मनुष्य |
| (रा०च०मा० ७।३८।१—८, ७।३८) | साधनकर भगवत्प्राप्ति कर सकता है। |
| | |

चोरीसे नहीं जाऊँगी श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग

[जानकीजी मारुतिसे]

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

'माँ! लंका चारों ओरसे धू-धू करके जल रही है। भंगकर मुझे प्राप्त किया, वे ही भगवान् शंकरके इस दम्भी

किसीको किसीकी सुधि लेनेका अवकाश नहीं है। जो अर्चकका दम्भ भंगकर मुझे ले जायँ, यही उचित होगा।

निशाचरी आपको घेरे बैठी थीं, वे भी प्राणोंकी—

परिवारकी चिन्तामें जा चुकी हैं। आप भी प्रभुके दर्शन

करने चलें। अपने इस अकिंचन हनुमान्के कन्धेपर

विराजमान होइये। मेरा यही विनम्र निवेदन है।'

कहते हुए हनुमन्तलाल अशोकवाटिकामें बैठी

हुई जानकीजीके सम्मुख करबद्ध मुद्रामें बैठ गये। दो

क्षण उनकी ओर देखते हुए जानकीजी बोलीं— 'हनुमन्त! तुम इस बन्दिनीकी दशा देखकर,

भावुकतावश जो कह रहे हो, मैं उसके मर्मसे परिचित नहीं हूँ, ऐसा नहीं है। तुम कन्धोंपर क्या यदि अपनी

माता देवी अंजनीके समान अंकपाशमें भी भरकर ले जाओ, तो भी मुझे आपत्ति नहीं है। तुम्हारे वायुवेगसे चलनेके कारण इस अगाध सागरके विस्तृत आकाशमण्डलसे

गिरनेका भी मुझे भय नहीं है। मैं तुम्हारी शक्ति-सामर्थ्य, बुद्धिमत्तासे प्रभावित हूँ। प्रभुके प्रति तुम्हारी सात्त्विक

निष्ठापर मुझे गर्व है।' किंतु— 'किंतु, क्या माँ!' 'हाँ पुत्र, मुझे अपना यह बन्दिवास, प्रभु-विरह

प्रिय है, यह तो कोई भी नहीं मान सकता।' किंतु— 'यह भी नहीं, यह भी नहीं तो फिर विलम्ब

क्यों ? इस अशोकवृक्षपर पदाघातकर, अशोक-वाटिकाको

धिक्कारती हुई, आप उठ क्यों नहीं रही हैं?' 'हनुमन्त! मेरा कष्ट, मेरा अपमान देखकर तुम्हारी

करुणा-तुम्हारा ममत्व तुम्हें वही कहनेको प्रेरित कर रहा है, जो ऐसी स्थितिमें कोई प्रिय परिवारीजन ही कह सकता है। किंतु दूरदृष्टिसे विचारो, कल संसार क्या कहेगा?

आयी, अपहृता-जैसी बनकर निकल गयी। उसके धनुर्धर

मेरे प्रभुने पृथ्वीको राक्षसिवहीन करनेका प्रण किया है, तो क्या उनकी परिणीता मैं, इस लंकाको राक्षसविहीन

हुई देखे बिना चली जाऊँ? जो भुजाएँ मेरा बलात् हरणकर आकाशमार्गसे यहाँ लायीं, उन भुजाओंको कटकर धरतीकी धूलमें पड़ी हुई देखे बिना यहाँसे चली

जाऊँ ? महाबली अयोध्यानाथके वामांगमें लज्जासे नतमस्तक अथवा निर्लज्जोंकी भाँति मस्तक उठाकर बैठनेके लिये

चली जाऊँ? वत्स! सीताका अपहरण तो छलपूर्वक हुआ। कदाचित् अकल्पित स्थितिमें मरण भी हो सकता है, किंतु वरण तो विधाता भी करना चाहें तो वे भी

सफलताका मुख टुकुर-टुकुर ताकते रह जायँगे। अवधेश्वरके साथ उसी अवधेश्वरीकी शोभा होगी, जो अपने अपहर्ताके खण्डित मस्तकोंको सोपान बनाती हुई, सूर्यासनतक

पदार्पण करेगी। त्रैलोक्यवन्दिता मेरी अग्रजा अंजनीके समुज्ज्वल क्षीर! तुम प्रभुके पास जाओ। उन्हें यह कथा सुनाओ। उन्हें यहाँ लेकर आओ। मुझे इस कठिन बन्दिवाससे छुड़ाओ, किंतु उनकी रक्षहीन पृथ्वी करनेकी

प्रतिज्ञा-पूर्तिपर ही। अब जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।' नतमस्तक हनुमन्तलालने छलकनेको आकुल अपने नेत्रोंको तो तुरंत पोंछ लिया, किंतु उनके शब्दोंको अधरोंके

कपाट खोलकर, प्रकट होनेमें तो कई क्षण लग गये। विदाईकी

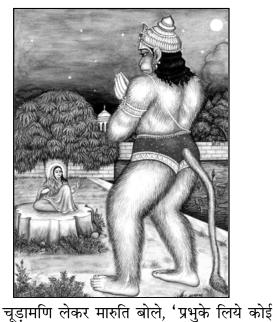
मुद्रामें वे कठिनतासे इतना ही बोल पाये कि 'जैसे प्रभुने अपनी मुद्रिका देकर भेजा, उसी प्रकार आप भी…' 'हाँ-हाँ' कहती हुई जानकीजीने अपने जूड़ेसे

िभाग ९०

निकालकर दिव्य चूडामणि उनके हाथपर रख दी। यह चूड़ामणि शम्बरासुर-रणके पश्चात् महारानी कैकेयीको

छली गयी सीता, छलकर चली गयी। अपहृता होकर

स्वयं इन्द्राणीने दी थी। वही महारानी कैकेयीद्वारा दी गयी च्रड़ामणि उन्हें महारानी सुमित्राद्वारा मुँहदिखाईमें दी गयी स्वीमान्नेपंडागि सिंन्निः शास्त्रिक्ष्णे भाषाम् अर्थक्षिकः व्यविभवद्यायः तीमी पृष्टि नेपनी सिक्ति क्रियोरी अपिक्षि श्रीर्थ



सन्देश''''
'हाँ, प्रभुसे इतना ही कहना कि इन्द्रपुत्र जयन्तपर जिस शरका उन्होंने सन्धान किया था, उस शरको शरालय

जिस शरका उन्होंने सन्धान किया था, उस शरको शरालय (तरकश)-से निकालकर शरासन (धनुष)-पर स्थान दें।' यह निकल्टकी वह घटना थी, जिससे लक्ष्यण भी

यह चित्रकूटकी वह घटना थी, जिससे लक्ष्मण भी अनिभज्ञ थे। साष्टांग प्रणाम करते हुए पवनपुत्रके मस्तकपर अपने दोनों हाथ रखते हुए जगदम्बा जानकीकी

वाणी-निर्झिरिणी अजस्र गतिसे प्रवाहित होने लगी-

अजर अमर गुनिनिध सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥ जय-जयकारोंसे गगनको निक्षान श्रीगंगाजीकी रथयात्राका विधान

अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता॥
— अनेकानेक अमोघ आशीर्वाद पाते हुए पवनपुत्र

पवनगतिसे पवनमार्गसे उड़ चले। उनकी प्रहर्षित किलकारीने

समुद्रतटपर निष्प्राण-जैसे बैठे वानरसमूहमें नूतन प्राणोंका संचार कर दिया। वे राघवेन्द्र श्रीरामको सन्देश देने,

आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥ चारों जुग परताप तुम्हारा। होहुँ प्रसिद्ध जगत उजियारा॥ साध संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे॥

पवनवेगसे कूदते-फाँदते, एक-दूसरेको लाँघते-फलाँगते, जय-जयकारोंसे गगनको गुँजाते हुए पवनवेगसे चल पड़े।

(डॉ॰ श्रीश्याम गंगाधरजी बापट) पुराणोंमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवी, सूर्य, गणेश आदिकी रथयात्राओंका विधान है। भगवान् जगन्नाथकी रथयात्रा

तो प्रसिद्ध ही है, उसी प्रकार गंगा-दशहरामें गंगाजीकी रथयात्रा निकालनेका भी विधान है। भगवती दुर्गाकी रथयात्राके समान ही गंगाकी रथयात्रा निकालनी चाहिये। नारदपुराण (उत्तरखण्ड ४३।५८-६०)-में इसका वर्णन मिलता है—

रथयात्रादिने तस्मिन् विभवे सित कारयेत् । रथारूढप्रतिकृतिं गङ्गायास्तूत्तरामुखम्॥

भ्रमन्त्या दर्शनं लोके दुर्लभं पापकर्मणाम् । दुर्गाया रथयात्रास्ति तथैवात्रापि कारयेत्।।

एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । दशपापैर्वक्ष्यमाणैः सद्य एव विमुच्यते॥

यदि आपके पास वैभव हो तो स्वयं अन्यथा सार्वजनिक रूपसे पूजनोपरान्त गंगाकी रथयात्रा निकालनी चाहिये।

रथपर गंगाकी प्रतिमा या चित्र रखकर, जिसका मुख उत्तर दिशाकी ओर हो, जो मोक्षका सूचक है, विराजमान करें। रथपर भ्रमण करती गंगाका दर्शन इस लोकमें पापी मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्रकार विधिपूर्वक रथयात्रा सम्पन्न करनेसे करोड़ों जन्मोंसे संचित दशविध पाप नष्ट हो जाते हैं। वस्तुत: रथयात्रा गंगाके अविच्छिन्न प्रवाहको बनाये रखने,

करनस कराड़ा जन्मास साचत दशावय पाप नष्ट हा जात है। वस्तुत: रथयात्रा गंगाक आवाच्छन्न प्रवाहका बनाय रख गंगाके गुणों एवं महिमासे परिचित करानेहेतु जनजागरणका एक माध्यम भी है, जिसकी आज महती आवश्यकता है।

गोवंशकी रक्षा कैसे हो ? (डॉ० श्रीब्रह्मानन्दजी) गोवंशकी रक्षा करना स्वतन्त्र भारतमें कोई सरल परंतु गोवंशको राज्यसे बाहर ले जानेमें भी कठोर कार्य नहीं है। विडम्बना यह है कि भारतके स्वतन्त्रता-प्रतिबन्ध होना चाहिये। जैसे राजस्थान, हरियाणा और मध्य प्रदेशमें प्रतिबन्ध है। गोतस्करोंद्वारा ट्कोंमें लादकर संग्रामके समय यह राग अलापा जा रहा था कि जब भारत स्वतन्त्र हो जायगा तब इस देशमें गोहत्या बन्द गाय-बैलोंको दूसरे राज्योंमें ले जाया जाता है, आवश्यकता हो जायगी, किंतु स्वतन्त्र भारतमें ही सर्वाधिक गोहत्या है कि जिस राज्यमें गोहत्यापर प्रतिबन्ध नहीं है, वहाँ हुई है। जबिक मुगल बादशाहोंने हिन्दुओंकी भावनाओंका गोहत्याको रोकनेका उपाय किया जाय। आदर करते हुए गोहत्यापर प्रतिबन्ध लगा दिया था। ५. भारतमें बहुमत किसानोंका है। आज किसानके गोहत्याका प्रारम्भ अंग्रेजी राजमें हुआ था। जबकि पास जोतनेके लिये कृषिभूमि कम होती जा रही है। यदि किसान बैलों या ऊँटोंसे खेती करे तो लाभकारी है। देशी रजवाड़ोंके समयमें यह बन्द थी। आज गोहत्याके कारण हिन्दुओंकी भावनाओंको ठेस तो पहुँच रही ही उससे डीजलका खर्च बचता है और खेतोंको गोबरकी है; साथ ही गोधनका धार्मिक, आर्थिक और वैज्ञानिक कम्पोस्ट खाद भी मिलती है। कृत्रिम खाद यूरिया आदि दृष्टिकोणोंसे भी रक्षण करना समाजके लिये हितकारी उर्वरक जमीनको खराब करते हैं। कीटनाशक दवाओंको है। परंतु यह एक ज्वलन्त प्रश्न है कि भारतमें विनाशके खेतोंमें छिड़कना धरतीको ऊसर बनाना है। जबसे इस कगारपर खड़े गोवंशकी रक्षा कैसे की जाय? सर्वप्रथम देशमें परम्परागत बैलोंकी खेतीको छोड़कर ट्रैक्टर चलने लगे हैं, तबसे गोवंशपर संकटके बादल छा गये हैं। यह समस्या कि इस देशमें गोचर भूमि प्राय: बहुत कम बची है। जबतक पर्याप्त गोचर भूमि नहीं होगी तो ६. यदि किसी किसानके पास केवल दस बीघा

सत्य है। गोवंशकी रक्षाके सन्दर्भमें कितपय व्यावहारिक समस्याएँ और उनके समाधान इस प्रकार हैं— १. यदि गोवंशकी रक्षा करना है तो सर्वप्रथम गोचारण भूमिका प्रबन्ध होना चाहिये। २. हम गोवंशके प्रति मौखिक सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। व्यावहारिक रूपसे गायोंकी अपेक्षा भैंसें अधिक पाल रहे हैं। हिन्दुओंमें गायोंकी प्रति भावनात्मक भावना तो है; क्योंकि गोवंश हिन्दू-धर्म और संस्कृतिका युग-युगान्तरसे अंग रहा है।

३. आज शहरोंमें गायें गलियोंमें भटकती रहती हैं।

४. कई राज्योंमें गोहत्यापर विधिवत् प्रतिबन्ध है,

गोतस्कर उन्हें चोरीसे रातको उठा लेते हैं और ट्रकोंमें

लादकर ले जाते हैं। समाचार-पत्रोंमें इस प्रकारकी

घटनाएँ प्राय: रोज पढी जाती हैं।

पशुधनकी रक्षा करना बड़ा कठिन है। यह एक कटु

शुरू हो गये हैं। इसका यह कारण है कि रेतीली जमीनमें जो घास या छोटी खेजड़ी आदिकी जड़ें होती हैं, ट्रैक्टर उन्हें खींच ले जाता है। बैलों और ऊँटोंके हलोंसे वह बच जाती है। यह दु:खका विषय है कि खेजड़ी वृक्ष जो राजस्थान या रेगिस्तानका कल्पवृक्ष है, अब वह विनाशके कगारपर है। ७. यदि मुसलमान भाई हिन्दुओंकी भावनाओंको गोहत्या करके ठेस न पहुँचायें तो दोनों मिलकर इस

देशमें एक हो जायेंगे, कभी भी कोई साम्प्रदायिक दंगा

किया जा सकता। लोगोंमें सत्संगति और सद्बुद्धि होगी

८. किसी भी अपराधको कानूनके द्वारा बन्द नहीं

नहीं होगा और दोनों ही प्रगति कर सकेंगे।

जमीन है तो उसको ट्रैक्टरकी आवश्यकता नहीं है।

मारवाड़के किसानोंकी एक बड़ी शिकायत है कि जबसे

भूडैली, रेतीली जमीनपर ट्रैक्टर चलने लगे तबसे अकाल

िभाग ९०

गोवंशकी रक्षा कैसे हो? संख्या २] तभी यह सम्भव है। मृत्युदण्डका प्रावधान है फिर भी सरोवर, जोहड़ और कूप भी सूख गये हैं। कारण यह हत्याएँ हो रही हैं। कानूनका भय तो अवश्य होता है। कि वन कट गये हैं जबिक वृक्षोंकी रक्षा करना धर्मका समाजको सुचारु रूपसे चलानेके लिये कानून तो एक अंग माना जाता था। बड़ और पीपल लुप्त हो रहे आवश्यक है, परंतु उससे भी आवश्यक है-गोके प्रति हैं। वृक्षोंके अभावमें वर्षा कम होने लगी है। जलवायु-पुज्य भावना। पहले हर घरमें गायें होती थीं। अब परिवर्तन हो रहा है, सारी धरती गरम हो रही है। गोमाता उपेक्षाका शिकार हैं। सरकारका भी यह कर्तव्य यह धरतीमाता भी एक गऊके समान है, जो है कि गोपालनपर जोर दे और अधिक-से-अधिक पर्यावरण-प्रदूषणसे ग्रसित है। गोधन और पशुधनसे गोशालाओंकी स्थापना हो। किसी भी धर्ममें गोवधका भारत धनी देश हो सकता है, जैसे पहले था। विधान नहीं है। मांसाहारसे शाकाहार और मदिरापानसे राष्ट्रपिता पूज्य महात्मा गांधीजीने गोरक्षाके सम्बन्धमें दुग्धपान उत्तम है—यह विज्ञानका सिद्धान्त है। अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं-यह बात ९. गोरक्षाके उपायके बारेमें पूज्य स्वामी करपात्रीजी मुख्यतः सरकारके हाथकी है। इसमें लोगोंको पश् महाराजने लिखा है-बृढ़ी, लूली-लॅंगड़ी, रोगी, दूध न पालना, दुग्धालय चलाना और साँड चुननेकी शिक्षा देना देनेवाली—चाहे किसी भी प्रकारकी गौ हो, उसको जरूरी है। मेरे विचारके अनुसार सारी प्रजाके साथ बेचना या उसकी उपेक्षा करना महापाप है। हर तरहसे दृढ़तासे और ज्ञानपूर्वक काम करते हुए गोधनकी रक्षा आदरपूर्वक उनकी रक्षा, सेवा, पूजा कुटुम्ब, समाज तथा करना राज्यका कर्तव्य है। बालकों और लोगोंको नीरोग राष्ट्रका मंगल करनेवाली होती है। और सस्ता दुध मिल सके—ऐसी व्यवस्था करना राज्यके प्रथम कर्तव्योंमेंसे एक कर्तव्य है, ऐसा मैं मानता वेदमें कहा गया है 'एकं सिद्धप्रा बहुधा वदन्ति।' मतभेद होना स्वाभाविक है। गायकी रक्षाके लिये हूँ। वास्तवमें हम लोग सिद्धान्तोंका गुणगान करते हैं, सनातनी, आर्यसमाजी, बौद्ध, जैन और सिक्ख एकमत जैसा गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है— हैं। इस्लाम और ईसाई मतमें भी गोवधका विधान नहीं 'पर उपदेस कुसल बहुतेरे।' है। इसलिये कहा गया है 'गावो विश्वस्य मातरः।' —व्यवहारमें कुछ नहीं है, जबानी जमा खर्चमें कोई इस देशमें प्रकृतिका निरन्तर विनाश हो रहा है। कार्य नहीं होता, गोमाता, गंगामैया और श्रीमद्भगवद्गीता राजनीतिसे ऊपर हैं। सिद्धान्तोंकी दुहाई देना सरल है और भयंकर पर्यावरण-प्रदुषण हो रहा है। विकास भी देशके लिये आवश्यक है, परंतु विकास और पर्यावरणका व्यावहारिक या क्रियात्मक रूपसे असली जामा पहनाना सन्तुलन बिगड़ गया है। भारत धर्मप्रधान और कृषि-बडा कठिन है। प्रधान देश रहा है। यह अमेरिका या यूरोप नहीं है। भारत आज हमारे देशमें पशुपालन, गोसेवा आदिके सम्बन्धमें दयनीय स्थिति हो रही है। निरन्तर पशुधन घट रहा है। एक प्राचीन देश है। यह प्रकृतिका देश है, इसे अमेरिका या पश्चिमी देशोंके समान नहीं बनाया जा सकता है। गोवंशपर आज भयंकर विपत्ति आयी है। हम लोग क्रियात्मक जिस देशमें दूधकी नदियाँ बहती थीं, एक-एक रूपसे कुछ भी नहीं कर रहे हैं। एक काम गोदान है, ऋषिके आश्रममें दस-दस हजार गायें होती थीं; आज जिससे हमें गोमाता मृत्युके पश्चात् वैतरणी नदीसे पार कर दुधकी तो क्या पानीकी निदयाँ भी सुख गयी हैं। दें। यह हमारी कितनी स्वार्थपूर्ण भावना है। हमें गोमातासे विशेषकर राजस्थानकी बरसाती नदियाँ इसकी प्रत्यक्ष मीठा दूध चाहिये, पर हम गोसेवा और उसकी रक्षासे उदाहरण हैं। जमीनका जलस्तर पातालको जा रहा है। कोसों दूर हैं, यह कैसी विडम्बना है ?

गोपी-प्रेमका वैशिष्ट्य

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

एक भाई गोपी-प्रेमकी बात पूछ रहा था। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण और किशोरीजीकी प्रेमलीलासे

कहना है कि जबतक प्राणीका शरीर और संसारसे यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है। उनकी लीला अपने

सम्बन्ध नहीं छूटता, जबतक वह शरीरको मैं और भक्तोंको प्रेमका तत्त्व समझाने और रस प्रदान करनेके

संसारको अपना मानता है, तबतक गोपी-प्रेमकी बात

लिये ही हुआ करती है। एक समय श्यामसुन्दरके मनमें

समझमें नहीं आती। प्रेमीमें चाह नहीं रहती इसलिये प्रेमी

किशोरीजीको प्रेमरस प्रदान करनेके लिये उनकी परीक्षाकी

अपने लिये कुछ नहीं करता, जो कुछ करता है वह लीला करनेका संकल्प हुआ, तो आपने एक देवांगनाका

रूप धारण किया और किशोरीजीके पास गये। बातचीतके

अपने प्रियतमको रस देनेके लिये ही करता है। यहाँ

तर्कशील मनुष्य यह प्रश्न कर सकता है कि भगवान तो प्रसंगमें श्यामसुन्दरने कहा—'किशोरीजी! आप श्याम-

सुन्दरसे इतना प्रेम क्यों करती हैं ? वे तो आपसे प्रेम नहीं

सब प्रकारसे पूर्ण और रसमय आनन्दस्वरूप हैं। उनमें

किसी प्रकारका अभाव ही नहीं है। उनको रस देनेकी करते।' तब किशोरीजीने कहा—'तुम इस बातको क्या

बात कैसी ? उसको समझना चाहिये कि यही तो प्रेमकी समझो! प्रेम करना तो श्यामसुन्दर ही जानते हैं। वे ही प्रेम करते हैं। मुझमें प्रेम कहाँ है?' देवांगना बोली—

महिमा है, जो आप्तकाममें भी कामना उत्पन्न कर देता

है, सर्वथा पूर्णमें भी अभावका अनुभव करा देता है।

प्रेमियोंका भगवान् सर्वथा निर्विशेष नहीं होता। उनका भगवान् तो अनन्त दिव्य गुणोंसे सम्पन्न होता है और

उनका अपना प्रियतम होता है। उनकी दृष्टिमें भगवान्के

ऐश्वर्यका भी महत्त्व नहीं है। उनका भगवान् तो एकमात्र प्रेममय और प्रेमका ग्राहक है।

प्रेमी भगवानुको रस देनेके लिये ही अपना जीवन

सुन्दर बनाते हैं, जैसे सुन्दर पुष्पको खिला हुआ देखकर हैं।' किशोरीजीने कहा—'यह तो तब हो सकता है जबिक कुछ समयतक तुम मेरी सखी बनकर यहाँ रहो।'

वाटिकाका स्वामी उस फूलसे प्रेम करता है, उसको हाथमें लेता है, सूँघता है, उसकी शोभाको देखकर

प्रसन्न होता है; वैसे ही भगवान् भी अपने प्रेमीको

चाहरहित सुन्दर जीवनमुक्त देखकर प्रसन्न होते हैं,

उनको उससे रस मिलता है।

पुष्प तो जड होता है, इस कारण स्वयं मालीसे प्रेम नहीं करता। जैसे धनसे मनुष्य प्रेम करता है, परंतु धन

करता है अर्थात् भक्त भगवान्से प्रेम करता है और

जड होनेके कारण मनुष्यसे प्रेम नहीं करता। जीव जड नहीं है, चेतन है; इसलिये यह भी अपने प्रियतमसे प्रेम

भगवान् भक्तसे प्रेम करते हैं। भगवान् भक्तके प्रियतम

कहते ही देवांगनासे भगवान् श्यामसुन्दर हो गये। उनको

देखकर किशोरीजीने कहा—'ललिते! वह देवांगना कहाँ

है ? उसे बुलाकर प्यारेका दर्शन कराओ।' तब ललिता

'नहीं-नहीं, वे तो प्रेम नहीं करते, तुम्हीं प्रेम करती हो।'

तब किशोरीजीने कहा—'देवी! प्रेम करना जैसा श्यामसुन्दर

जानते हैं, वे जितना और जैसा प्रेम करते हैं, वैसा कोई

नहीं कर सकता।' तब देवांगना बोली—'मैं तो यह नहीं

मान सकती।' किशोरीजीने कहा—'तुमको कैसे विश्वास हो?' देवांगना बोली—'यदि वे आपके बुलानेसे आ

जायँ तो मैं समझूँ कि सचमुच वे भी आपसे प्रेम करते

देवांगनाने किशोरीजीकी बात स्वीकार की और उनकी

सखी बनकर रहने लगी। तब किशोरीजीने भावमें प्रविष्ट

होकर भगवान्से कहा—'प्यारे! तुम कहाँ हो?' इतना

बोली—'प्यारी! उसीमेंसे यह देव प्रकट हुए हैं, वह अब कहाँ है।' लिलता विवेक-शक्तिका अवतार है, यह भक्त

और भगवानुको मिलाती रहती है। इस लीलासे यह बात

िभाग ९०

स्पष्ट हो जाती है कि भक्त भगवान्से प्रेम करता है और औमांnीर्कांsभाषाहरूकेत्विकस्परहो लिक्निड्रै/dsc.gg/dhahmबान् भारते प्रेक्पानिके हैं OVE BY Avinash/Sha

साधनोपयोगी पत्र संख्या २] साधनोपयोगी पत्र निश्चय ही अनित्य और विनाशी है। हम प्रतिदिन देख (१) आध्यात्मिक उन्नतिके अमोघ साधन रहे हैं—हट्टे-कट्टे जवानोंके शरीर पटापट मृत्युके मुखमें प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र जा रहे हैं। अत: इस शरीरमें मोह-आसक्ति न रखकर मिला। आप आध्यात्मिक उन्नतिके लिये लगनके साथ इससे वास्तविक लाभ उठा लेना चाहिये। यह स्वयं साधनामें प्रवृत्त होना चाहते हैं और साधनाके कुछ उपाय विनाशी होते हुए भी नित्य अविनाशी परम तत्त्व भगवान्की प्राप्तिका—सत्यकी उपलब्धिका साधन हो पूछते हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। आपका यह विचार बहुत ही उत्तम है। मेरी समझसे आप नीचे लिखी सकता है। बिना प्रमादके प्रतिदिन इसको इसी काममें बातोंका सावधानीसे पालन करें तो आशा है कि आपको लगाये रखना चाहिये। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ—सभीके द्वारा शीघ्र तथा विशेष लाभ होगा— नित्य-निरन्तर भगवान्का सम्पर्क प्राप्त करते रहना १. खान-पानकी शुद्धि (असत् कमाईका अन्न चाहिये। समय जा रहा है-इसलिये आलस्य, प्रमाद, और राजस-तामस पदार्थ कभी न खायँ। मांस, अण्डे, भोगलिप्सा, प्रपंचके सेवन आदिमें इसे नहीं लगाना मद्य, जूठन, हिंसायुक्त तथा नशीली चीजोंका सेवन चाहिये। बुरे कर्म तो कभी करने ही नहीं चाहिये। बुरे बिलकुल न करें।) कर्म करनेपर तो शरीर घोर नरक और आसुरी योनिकी २. सन्ध्या, गायत्री-जप, नियमित नाम-जप, स्वाध्याय प्राप्तिका साधन बन जायगा। जो करते हैं, श्रद्धापूर्वक करते रहें। संसारके हानि-लाभ, सुख-दु:ख वास्तवमें कुछ हैं ३. नियमितरूपसे कम-से-कम २१६०० (इक्कीस नहीं। शरीर तथा नाममें 'मैं'-पन होनेसे ही इसका बोध हजार छ: सौ) भगवन्नामका विशेष जप करें; कुछ नाम-होता है। यदि हैं तो यह मानना चाहिये कि सुख-दु:ख, लाभ-हानि, आराम-पीड़ा सभीके द्वारा भगवान्का आशीर्वाद कीर्तन भी करें। ४. ब्रह्मचर्यका पालन करें। प्राप्त हो रहा है। सब उन्हीं मंगलमय प्रभुका मंगल-५. सदा सद्ग्रन्थों—उपनिषद्, गीता, रामायण, विधान है। सभीमें सदा उन्होंका मधुर संस्पर्श प्राप्त करना चाहिये। प्रत्येक घटनामें उनके मुसकानभरे मुखके भागवत आदिका अध्ययन करें। ६. बुरे संगका सर्वथा त्याग करके भक्त, संत तथा दर्शन करने चाहिये। शेष भगवत्कृपा। सदाचारी पुरुषोंका संग करें। (ξ) ७. नित्य अपनी भाषामें साधनाकी सफलताके प्रेमका स्वरूप लिये श्रद्धापूर्वक भगवान्से प्रार्थना करें। प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। प्रेम जब वास्तविक रूपमें आत्मप्रकाश करता है, आप श्रद्धापूर्वक करके देखें—कितना लाभ होता है। शेष भगवत्कृपा। तब वह जीवनमें सब ओर छा जाता है। देवर्षि नारद (२) कहते हैं—'तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति, शरीरको भगवत्प्राप्तिका साधन बनाइये तदेव भाषयति, तदेव चिन्तयति।' (नारदभक्तिसूत्र प्रिय भाई, सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। ५५) इस प्रेमको पाकर वह प्रेम ही देखता है, प्रेम ही शरीरके सम्बन्धमें यह निश्चय रखना चाहिये कि यह सुनता है, प्रेम ही बोलता है और प्रेमका ही चिन्तन

िभाग ९० करता है।' उसकी इन्द्रियाँ तथा उसके मनकी सारी (8) पूर्ण समर्पणमें कमी वृत्तियाँ प्रेमरूपा बन जाती हैं। इस अवस्थामें भोगको प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण! तुम्हारे कई पत्र स्थान ही कहाँ है। प्रेमास्पदके प्रेमके अतिरिक्त जगत्में कुछ रह ही नहीं जाता। यह स्थिति अत्यन्त विचित्र मिले। तुमने लिखा, सो तो ठीक है, पर बात ऐसी है होती है; उसका कोई वर्णन नहीं हो सकता—'अनिर्वचनीयं कि तुम अपना पूर्ण समर्पण मानते हो; मानना भी **प्रेमस्वरूपम्।**' (नारदभक्तिसूत्र ५१) प्रेमका स्वरूप चाहिये-मानते-मानते ही होता है, पर तुम्हारे मनमें अनिर्वचनीय है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपने लिये जो बार-बार चिन्ता होती है, मनमें उद्विग्नता पागल हो जाता है। पागलकी तो वृत्तियाँ विकृत होती तथा निराशा-सी आती है, मनमें भय होता है, दूसरे-हैं; पर यहाँ तो वृत्ति केवल पवित्र प्रेमाकारमें परिणत दूसरे उपाय सोचे जाते हैं, इसका अर्थ ही है कि तुम रहती है। महाप्रभ् श्रीचैतन्यकी इसी वृत्तिके कीर्तनमें पूर्णतया निर्भर नहीं हो; इसीसे चिन्ता, उद्वेग, भय आदि उनकी कीर्तन-ध्वनि सुनकर बड़े-बड़े तार्किक, नैयायिक होते हैं। पूर्ण समर्पणमें सहज पूर्ण निर्भरता होती है। पूर्ण पण्डित बलात् प्रेमाकर्षित होकर बाह्यज्ञानविस्मृत हो रूपसे निश्चिन्तता और निर्भयता आ जाती है। वास्तवमें नाच उठते थे। यह प्रेमोन्माद त्रिभुवनको पावन करनेवाला विश्वासकी कमीसे ही पूर्ण समर्पण नहीं होता-है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उद्भवसे कहते हैं— मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा। वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं (रा०च०मा० ७।४६।३) 'श्रीरामचरितमानस' के ये शब्द याद रखनेयोग्य रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च। विलज्ज उद्गायति नृत्यते च हैं। विश्वास होनेपर किसी भी परिस्थितिमें किसी प्रकारका भी उद्वेग या क्षोभ नहीं होगा। न भविष्यकी मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥ चिन्ता होती है. न स्खलन होता है। विश्वासी समर्पणमय (श्रीमद्भागवत ११।१४।२४) 'जिसकी वाणी प्रेमसे गद्गद हो रही है, चित् जीवन सदा-सर्वदा सहज ही प्रभुके अनुकूल चेष्टा पिघलकर एक ओर बहता रहता है, एक क्षणके लिये करता हुआ प्रभुकी स्मृतिमय बना रहता है। इसका अर्थ भी रोनेका ताँता नहीं टूटता, परंतु जो कभी-कभी खिल-यह नहीं कि वह विवेकशुन्य हो जाता है; अवश्य ही खिलाकर हँसने भी लगता है, कहीं लाज छोड़कर ऊँचे विवेककी धारा बदल जाती है। उसका विवेक सदा स्वरसे गाने लगता है, तो कहीं नाचने लगता है, भैया जाग्रत् रहता है, जो कभी उसको प्रभुके विपरीत विचार उद्भव! मेरा वह भक्त न केवल अपनेको बल्कि सारे या क्रिया नहीं करने देता, कभी सन्देह नहीं आने देता संसारको पवित्र कर देता है।' और उत्तरोत्तर विश्वास, अनुकूल आचरणकी प्रवृत्ति और जबतक ऐसा न हो, तबतक बार-बार मनको तथा सात्त्विकी शान्ति तथा आनन्दको बढाता रहता है। इन्द्रियोंको हर उपायसे भगवान्के प्रेममें लगाते रहना अतएव अपनी ओर सदा देखते रहना चाहिये और नित्य-चाहिये। भोगोंमें अरुचि तथा भजनमें रुचि पैदा हो, निरन्तर भगवान्की अहैतुकी कृपाका, उनकी महान् इन्द्रियोंको तथा मनको सदा ही संगमें रखना चाहिये। प्रीतिका स्मरण करते रहना चाहिये। विश्वास जितना ही यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवत्प्रेममें कामनाको ही बढ़ेगा, उतनी ही निर्भरता बढ़ेगी, उतना ही समर्पण स्थान नहीं है, भोगकी तो बात ही नहीं। सदैव सावधान पूर्णताकी ओर जायगा। विश्वास रखो-भगवत्कृपासे रहो और लगे रहो। शेष भगवत्कृपा। ऐसा हो ही जायगा। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

व्रतोत्सव-पर्व

संख्या २]

| सं० २०७२, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष | | | | | | | | | | | |
|--|---|---|------------------------------------|---|--|--|--|--|--|--|--|
| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि | | | | | | | |
| द्वितीया रात्रिमें ८।११ बजेतक तृतीया " १०।१५ बजेतक | शुक्र शनि | हस्त रात्रिमें ८। २५ बजेतक चित्रा '' ११। ३ बजेतक स्वाती '' १। ३८ बजेतक विशाखा '' ३। ५९ बजेतक | २४मार्च २५ ;; २६ ;; २७ ;; | वसन्तोत्सव (होली)। तुलाराशि दिनमें ९।४४ बजेसे। भद्रा दिनमें ९।१२ बजेसे रात्रिमें १०।१५ बजेतक। संकच्टी श्रीगणेशचतुर्थीवृत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।२९ बजे, वृश्चिकराशि रात्रिमें ९।२४ बजेसे। | | | | | | | |
| | मंगल बुध | अनुराधा अहोरात्र अनुराधा प्रातः ६।३ बजेतक ज्येष्ठा दिनमें ७।४० बजेतक मूल ''८।४८ बजेतक | ३० ,, | रंगपंचमी। भद्रा रित्रमें २।५० बजेसे, मूल प्रातः ६।३ बजेसे। भद्रा रित्रमें २।५० बजेतक, धनुराशि दिनमें ७।४० बजेसे। श्रीशीतलाष्टमीव्रत, रेवतीका सूर्य दिनमें ८।१६ बजे, मूल दिनमें ८।४८ बजेतक। | | | | | | | |
| दशमी ,, २।२३ बजेतक एकादशी,, १।४ बजेतक | शनि रवि | पू० षा० '' ९।२७ बजेतक उ० षा० '' ९।३७ बजेतक श्रवण '' ९।१८ बजेतक | १ अप्रैल २ ,, ३ ,, | मकरराशि दिनमें ३।३० बजेसे। भद्रा दिनमें २।४९ बजेसे रात्रिमें २।२३ बजेतक। कुम्भराशि रात्रिमें ८।५७ बजेसे, पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका), पंचकारम्भ रात्रिमें ८।५७ बजे। | | | | | | | |
| त्रयोदशी "९। २४ बजेतक | मंगल | धनिष्ठा '' ८।३५ बजेतक शतभिषा दिनमें ७।३१ बजेतक पु० भा० प्रातः ६।१२ बजेतक | ४ ,, ५ ,, ६ ,, | × × × × × × × × • भद्रा रात्रिमें ९।२४ बजेसे, मीनराशि रात्रिमें १२।३२ बजेसे, भौमप्रदोषव्रत, बुढ़वामंगल। भद्रा दिनमें ८।१९ बजेतक। मूल रात्रिशेष ४।४२ बजेसे। | | | | | | | |
| अमावस्या सायं ४।५१ बजेतक | | उ॰ भा॰ रात्रिशेष ४।४२ बजेतक रेवती रात्रिमें ३।३ बजेतक | 9 ,, | मेषराशि रात्रिमें ३। ३ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ३। ३ बजे, अमावस्या। | | | | | | | |
| सं० २०७ | सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष | | | | | | | | | | |
| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि | | | | | | | |
| प्रतिपदा दिनमें २।२६ बजेतक द्वितीया '' १२।० बजेतक तृतीया ''९।४२ बजेतक चतुर्थी '' ७।३२ बजेतक पंचमी रात्रिशेष ५।३९ बजेतक | शनि रवि सोम | कृत्तिका 🗤 १०। १६ बजेतक | ९ ,, | चैत्र नवरात्रारम्भ, 'सौम्य' संवत्सर प्रारम्भ, मूल रात्रिमें १।२२ बजेतक। वृषराशि रात्रिशेष ५।२२ बजेसे। भद्रा रात्रिमें ८।३७ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, गणगौर। भद्रा दिनमें ७।३२ बजेतक। | | | | | | | |
| | | मृगशिरा '' ८ । १ बजेतक आर्द्रा '' ७ । २२ बजेतक | | मिथुनराशि दिनमें ८। ३० बजेसे, श्रीसूर्यषष्ठीव्रत, श्रीस्कन्दषष्ठी। भद्रा रात्रिमें २।५० बजेसे, मेष-संक्रान्ति रात्रिमें ९।३९ बजे, खरमास समाप्त, वैशाखी। | | | | | | | |
| अष्टमी '' २।३ बजेतक नवमी ''१।४४ बजेतक दशमी ''१।५७ बजेतक एकादशी''२।४४ बजेतक | शनि | पुनर्वसु ''७।९ बजेतक पुष्य ''७।२४ बजेतक आश्लेषा ''८।९ बजेतक मघा ''९।२५ बजेतक | १५ '' १६ '' | भद्रा दिनमें २। २७ बजेतक, कर्कराशि दिनमें १। १३ बजेसे, श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, महानिशापूजा। श्रीरामनवमीव्रत, मूल रात्रिमें ७। २४ बजेसे। सिंहराशि, रात्रिमें ८। ९ बजेसे। भद्रा दिनमें २। २० बजेसे २। ४४ बजेतक, कामदा एकादशीव्रत | | | | | | | |
| द्वादशी '' ३।५५ बजेतक त्रयोदशी गत्रिशेष ५।३२ बजेतक | | पू० फा० '' ११ । ८ बजेतक उ० फा० '' १ । १६ बजेतक | | (सबका), मूल रात्रिमें ९। २५ बजेतक। कन्याराशि रात्रि ५। ३९ बजेसे। भौमप्रदोषव्रत, श्रीमहावीर-जयन्ती, सायन वृषराशिका सूर्य रात्रिमें | | | | | | | |

पूर्णिमा १९। ३१ बजेतक शुक्र चित्रा प्रात: ६। १७ बजेतक २२ ११ पूर्णिमा, श्रीहनुमञ्जयन्ती, वैशाखस्नान प्रारम्भ।

कृपानुभूति गंगा माँकी कृपासे अभिलषित अन्तिम दर्शन

हो गया। शीघ्र ही हरकी पैडीपर पहुँचकर स्नान करने बात सन् १९८४ ई० की है, तब दूरसंचार-क्रान्ति नहीं थी, हमारा गाँव मध्य प्रदेश एवं राजस्थानकी सीमापर लगा। ज्यों ही मैंने गंगा माँको पुकारकर 'अभिलाषा पूर्ण

था, जहाँ टेलीफोन आदिकी सुविधा नहीं थी, व्यक्तिश: करो माँ!' ऐसा कहते हुए डुबकी लगायी। डुबकी लगाते

पहँचकर या डाकद्वारा ही सन्देश सम्भव होता था।

ही खडा होकर सामने देखा तो मेरी दृष्टि वहाँ बनी हुई

मेरी इच्छा बगीचा लगानेकी थी, ऐसी चर्चा पिताश्रीसे पुलियाकी दीवारपर पड़ी, जहाँ लिखा था 'अस्थिप्रवाहघाट'।

पूर्वमें हुई थी। एक दिन रविवारको सहसा उन्होंने प्रस्तावित बस, मुझे और कुछ भी नहीं दिखा, केवल वही शब्द मेरी

दृष्टिमें जम गया, थोड़ी देरमें चक्कर आने लगा, केवल किया कि वर्षान्त हो रहा है फिर कब तुम्हारा बगीचा

सरसब्ज होगा ? पर्याप्त समयसे वे रुग्णावस्थामें नित्यकर्म वही दिखता रहा। मेरे मित्रादि स्नानमें तल्लीन थे और मैं

आदि कर सकनेकी क्षमतामात्र रखते थे, ऐसी अवस्थामें व्याकुल गंगामें खडा था, अन्त:करणमें सहसा प्रेरणा हुई—

मैं उन्हें एक रात्रि भी नहीं छोड सकता था, किंतु प्रस्तावको आदेश आया कि तुम शीघ्र घर पहुँचो।

उनकी इच्छा मानकर मैंने कहा कि पौधे कोटा-जैसे बड़े मैंने अपने मित्र एवं परिचारकसे शीघ्र बाहर निकलने

शहरसे लाने पड़ेंगे, उन्होंने कहा कि ले आओ। सपरिवार हेतु आग्रह किया तो वे आश्चर्य करने लगे कि भाई साहबको

हमने खीर-पृडीका भोजन उनके साथ किया और आज्ञा क्या हो गया ? बार-बार पूछनेपर मैंने एक ही बात दोहरायी लेकर दोपहरको रवाना हो गया। कि शीघ्र चलना है, बसमें बैठो। उनकी दर्शनोंकी, मन्दिर

छोटे भैयाको उनकी सेवाका निर्देश देकर चल आदिपर जाने एवं शहर घूमनेकी इच्छा थी, पर मेरी व्याकुलता

दिया। २०-२५ किलोमीटर दुर छीपा बडौदसे बस देखकर वे बसमें बैठकर शीघ्र सहारनपुर आ गये, पौधोंको

बदलकर सालपुरा रेलवे स्टेशनकी मोटर पकड़ी और ५ लिया और दिल्लीके लिये चल दिया, दिल्लीसे देहरादून

बजे सायं रेलसे कोटाके लिये खाना हो गया। एक्सप्रेसद्वारा सुबह कोटा पहुँचा, कोटासे बीनाकी ट्रेनद्वारा

इधर इतनी ही देरमें पिताश्रीकी तिबयत बिगड गयी दोपहर सालपुरा स्टेशन उतरकर गाँववाली बसको पकडा,

और घरसे एक व्यक्तिको मुझे बुलानेहेतु रवाना कर दिया २५-३० कि०मी० पहले ही गाँवके यात्री मिले और उन्होंने

गया, वह मुझे नहीं पकड़ सका; क्योंकि रेल निकल पिताश्रीकी तबियत बहुत ज्यादा खराब होनेकी सूचना दी,

चुकी थी, उस समय आवागमनके अन्य साधन नहीं थे, साधनोंकी कमीके कारण सायंकालतक घर पहुँच पाया,

मैं दूसरे दिन सुबह ११ बजे कोटा पहुँच सका। वहाँ जाकर पूर्व सूचनाके अनुरूप सारा हाल देखा, पिताश्री

इधर मैं ट्रेनसे कोटा पहुँचा और स्टेशनपर उतरकर बेहोश थे। परिजन एकत्रित थे, मैंने ज्यों-ही चरण छूकर

विचार किया कि यहाँ अच्छे किस्मके पौधे नहीं मिल आवाज लगायी तो वे बोल उठे। मैंने कहा—मैं आ गया

सकते। अतः सहारनपुर (यू०पी०)-से लाये जायँ तो हूँ, तो उन्होंने कहा—तू आ गया, बहुत अच्छी बात है,

उत्तम रहेगा, ऐसा विचारकर जंक्शनपर रुककर रात्रिको ऐसा कहकर पुन: अचेत-से हो गये। रात्रिको कभी होश

अवध एक्सप्रेससे दिल्लीके लिये खाना हो गया। आया तो हम राम-राम स्मरण करवाते रहे और ब्राह्म-

मुहुर्तमें उनका श्वास रुक गया, वे श्रीहरिशरण हुए। माँ सुबह कोटामें मेरी तलाशकर निराश व्यक्ति पुन: घर लौटा, मैं दिल्लीसे मेरठ अपने मित्रके पास पहुँचा और

गंगाकी महती कृपासे मेरी अन्तिम दर्शनोंकी अभिलाषा सहारनपुरका प्रोग्राम बनाकर दूसरे दिन प्रात: वहाँ ४-५ पूर्ण हुई; क्योंकि लगभग १००० कि०मी० दूर सन्देश

सौ पौधोंको पसन्दकर आर्डर दे, पैकिंगके लिये कहा। देकर वहाँसे शीघ्र घर पहुँचनेको कहनेवाला माँ गंगाके हरिद्वार निकट होनेके कारण मैंने गंगास्नानकी इच्छा अतिरिक्त कौन था ? ऐसी परम कारुणिक गंगामैयाकी जय!

अभागेतिराष्ट्रेत्यक्रिक्टिन्से उद्यापक इतिहाड के विषये. दुवुर्णि harma | MADE WITH LOVE BY के अभिक्रा हार्य

पढो, समझो और करो संख्या २] पढ़ो, समझो और करो अग्रवालके मकानमें, जो अग्रवाल कॉलोनीमें था, एक (8) गंगारजके प्रयोगसे चर्मरोगसे मुक्ति हिस्सा किरायेपर लेकर मैं अपने परिवारके साथ उसमें आयुर्वेद एवं वैद्यकशास्त्रके ग्रन्थोंमें गंगाजलके रहने लगा। उन दिनों मेरे परिवारमें मेरी पत्नी, एक पुत्री नियमित पानसे अजीर्णरोग, अजीर्णज्वर, संग्रहणी, राजयक्ष्मा, (५ वर्ष) तथा एक पुत्र (१ वर्ष)—कुल चार सदस्य थे। पुराना श्वासरोग आदि नष्ट होनेकी बात आयी है, जिस दिन हम शामको जबलपुर पहुँचे, उसी शाम नियमित गंगा-स्नान करनेसे मस्तकके समस्त रोगों तथा घरके सामनेसे जाते हुए, एक ठिंगने मजदूरनुमा साधारणसे चर्मरोगोंका नाश होता है। चर्मरोगके विषयमें मैं अपना अनजान व्यक्तिने मुझे 'साहब, जय रामजीकी' कहा, अगली सुबह जब हम घरके बाहर लगे नलसे पानी भरने एक अनुभव साझा कर रहा हूँ। सन् २००७-०९ ई० में मेरे दाहिने हाथकी तर्जनी एवं मध्यमा अँगुलीमें ही लगे थे कि वही व्यक्ति पुन: आया और 'जय रामजी' कहकर बोला—'साहब! आप रहने दें, मैं पानी कालीमिर्चके दानोंके बराबरके ८-१० मस्से उभर गये, कई उपचार किये, पर कुछ भी फर्क नहीं हुआ। मैंने भर देता हूँ ' और मेरे मना करनेपर भी जबरन हाथसे परिवारमें माँसे सुना था कि गंगाकी रजके प्रयोग से बाल्टी लेकर पानी भरने लगा। देर शामको जब मैं ऑफिससे घर आया तब श्रीमतीजीने बताया कि वह दाद-खुजली मिट जाते हैं। मैंने भी सन् २०१० ई० में १०-१५ दिन ऋषिकेश-स्वर्गाश्रममें गंगाकी महीन बालू व्यक्ति पुन: आया था और मना करनेपर भी घरकी (रज)-को स्नानके समय मस्सोंपर मला, इससे मेरा साफ-सफाईमें काफी मदद कर गया तथा कह गया कि चर्मरोग एक माहमें पूर्ण रूपसे ठीक हो गया और मस्से घरका कोई भी काम जो मेरे लायक हो, जैसे गेहँ भी सूख गये। गंगा शारीरिक-मानसिक लाभके साथ पिसवाना इत्यादि तो उसे नि:संकोच कहें। उसने अपना आध्यात्मिक लाभ भी प्रदान करती हैं, गंगास्नानके नाम बजरंग बताया; मैंने सोचा शायद कुछ पैसोंके लिये फौरी सेवा कर रहा होगा। बदनाम शहरमें छोटे-छोटे फलको प्राप्त करनेकी कामनासे करोडों नर-नारी कार्तिकी पूर्णिमा, माघी अमावस्या तथा वैशाखादि मासोंमें गंगास्नान-बच्चोंका साथ होनेसे मैंने अनजाने डरसे पत्नीको कर सुख और शान्तिका लाभ करते हैं। हिदायत दी कि ऐसे लोगोंसे जरा सँभलकर रहें तथापि मैंने मकान-मालिक श्रीअग्रवालजीको इसके बाबत बताया. —मनीषकुमार चाण्डक तो उन्होंने कहा कि आप बिलकुल न डरें, न घबरायें; (२) एक गरीब व्यक्तिके उच्च जीवनमुल्य यह बजरंग बहुत भला, नेक, ईमानदार एवं नि:स्वार्थ-सन् १९८२ ई० में मेरी पोस्टिंग स्टेट बैंकमें भावसे सेवा करनेवाला अतिविश्वसनीय व्यक्ति है। वह अधिकारी (असि० मैनेजर)-के पदपर जबलपुरकी घरके पीछे स्थित सरकारी टेलीकॉम फैक्ट्रीमें मजदूरकी सिविल लाइन्स शाखामें हुई। उन दिनों जबलपुर हैसियतसे कार्यरत है तथा पीछेकी चालमें बरसोंसे रहता गुण्डागर्दी, बदमाशी एवं अपराधोंके लिये कुख्यात शहर है। लोगोंकी सेवा करनेका उसमें शगल है। कॉलोनीके था। मैंने डरते हुए वहाँ अगस्त, १९८२ ई० में ज्वाइन किसी भी घरमें जो भी काम कोई कहता है, उसे वह किया। अपने एक स्थानीय मित्रके आश्वस्त करनेपर मैं खुशी-खुशी करता है। अग्रवालसाहबने बताया कि सितम्बर १९८२ ई० में सपरिवार जबलपुर रहने आ बरसोंसे उनके यहाँका अधिकांश घरेलू काम-काज वही गया। वहाँ एल०आई०सी० में कार्यरत श्रीधरमदासजी करता है और बहुत आग्रह करनेपर भी कोई पैसा नहीं

भाग ९० लेता। वे जब सपरिवार बाहर जाते हैं तो घरकी चाबी ईमानदारीपर अवाक् रह गया। बजरंगको दे जाते हैं, वह रातको उनके घरपर ही सोता एक बार मैंने बजरंगसे पूछा कि तुम दिनभर तथा घरकी देख-रेख करता है, लेकिन कुछ भी लेता कारखानेमें जी-तोड़ मेहनत करते हो, थक जाते होगे, नहीं है। उनकी बातें सुनकर मैं बजरंगके प्रति अपने फिर भी कामसे लौटकर आनेके बाद कॉलोनीमें सबके-विचारपर लज्जित हुआ तथा उसके बारेमें जाननेको घर जा-जाकर काम पूछते हो, करते भी हो, ऐसा करनेका जज्बा तुम्हारेमें कहाँसे आया? उसने कहा—'साहब! उत्सुक भी। धीरे-धीरे बजरंग हम लोगोंमें घुल-मिल-सा गया, बिना माँगे सेवा करता रहा, गरीब था, उसके भगवान्ने धन तो दिया नहीं। अतः धनसे सेवा या दान छोटे-छोटे बच्चे भी थे, वे भी कभी-कभार आने लगे। आदि तो कर नहीं सकते, पर भगवान्ने एक बलिष्ठ शरीर दिया है, मनमें संकल्पशक्ति दी है, अगर यह शरीर ही मेरे बच्चोंके साथ थोड़ा-बहुत खेलते भी, लेकिन कभी कुछ खाने-पीनेके लिये देते तो मना कर जाते, अनाज सेवाका माध्यम बना दिया तो सेवा-दान धनके दानसे वगैरह ठीक करना हो तो उसकी श्रीमतीको भिजवा कम थोड़े ही होगा।' मैंने कहा कि थोड़े पैसे अगर लोग देता, वह भी ख़ुशी-ख़ुशी मदद कर देती, मगर तुम्हें देते हैं तो लेनेमें क्या हर्ज है? बच्चोंकी अच्छी नि:शुल्क; इस प्रकार बजरंग और उसके परिवारने तो परवरिश हो सकती है, तो वह बोला—'साहब! मूल्य जबलपुरके बारेमें मेरे विचारोंको ही बदल दिया। लिया तो सेवा कहाँ रह जायगी, वह काम तो कारखानेमें मजदूरी करने-जैसा हो जायगा। रही बात बच्चोंकी एक बार बजरंग L.T.C. पर अपने गाँव जनपद अमेठी (उ०प्र०) गया तथा लौटनेपर मेरे पास आया परवरिशकी, तो यदि अच्छे संस्कार—सेवाभाव उनके और बोला, 'साहब! मैं तो बहुत कम पढ़ा-लिखा हूँ। जीवनमें आ गया तो परविरश उत्तम ही कही जायगी। वाह रे बजरंग! कितने ऊँचे जीवनमूल्य! वस्तुत: चरित्र L.T.C. का यात्राबिल बनाकर ऑफिसमें देना है। अत: एवं आदर्शसे भरा व्यक्ति गरीब नहीं अपितु हमसे कहीं आप मेरा यह काम अगर थोडा समय मिल जाय तो कर देते तो बड़ा उपकार होता।' मैंने उसके इस आग्रहको अधिक धनी है। -- बालकृष्ण महाजन अपने लिये एक आवश्यक कर्तव्य तथा अवसर समझकर (3) सहमित दी तथा उससे यात्राखर्चके लिये ब्योरा माँगा। अनुकरणीय गोभक्ति हमारी सोसायटीमें एक माताजी रहती हैं, जिनकी उसने बस-ट्रेनके सारे टिकट मुझे सौंप दिये; मैंने ऑटो, रिक्शा तथा अन्य खर्च जो L.T.C. के अन्तर्गत आयु लगभग १०० वर्ष है। गोसेवाको वे अपने दीर्घ भुगतानहेतु पात्र हैं, के बारेमें पूछा तो वह बोला— जीवनका मूल कारण मानती हैं। गोमाताके प्रति उनका 'बाबूजी! हम तो गरीब लोग हैं, रिक्शासे नहीं, पैदल पुज्यभाव हम सबके लिये अनुकरणीय है। उनसे ही स्टेशन गये, अपने गाँवमें भी रिक्शा नहीं किया। सम्बन्धित कुछ जीवन-प्रसंग इस प्रकार हैं-अत: कुछ खर्च नहीं हुआ, मैंने कहा—उसके लिये १. माताजी आजीवन अकेली रहीं और उनका बिलकी जरूरत नहीं होती, जो उचित किराया होता है, कोई सांसारिक निकट-सम्बन्धी नहीं है। वे कन्हैयाको वह बिलमें लिख सकते हैं, तो वह बोला—'नहीं, ही अपना सर्वस्व मानती हैं या फिर हम-जैसोंको पुत्रवत् साहब! यह तो बेईमानी होगी, थोड़े-से रुपयोंसे जिन्दगीकी स्नेह करती हैं। वे सरकारी सेवासे निवृत्त हैं और अपनी तपस्या खत्म हो जायगी, बस जो टिकट मेरे पास हैं, जीवनभरकी बचतके अतिरिक्त अच्छी पेंशन पाती हैं। उतना खर्च हुआ, उसका ही बिल बनवा दें।' मैं उसकी सादा जीवन और रहनेके लिये अपना अच्छा-खासा

| ो और करो ४९ |
|--|
| ************************************* |
| लिये नगरसे दो किलोमीटर दूर-स्थित गुरुकुलमें आने- |
| जानेकी एक समस्या खड़ी हो गयी। |
| इसी समस्याके समाधानहेतु श्रीसंघ भवानीमण्डीके |
| नेतृत्वमें गुरुकुल-प्रबन्धकारिणीके सदस्य एक शिष्ट- |
| मण्डलके रूपमें स्थानीय सिटीजन बसके स्वामी जनाब |
| अहमद हुसैन साहबके पास पहुँचे और उनसे अपनी समस्या |
| बतायी तथा गुरुकुलके बालकोंके लिये एक बस मासिक |
| किरायेपर देनेका प्रस्ताव रखा। सहज भावसे सोफेपर आसीन |
| बीड़ीके कश खींचते एवं धुएँके छल्ले हवामें तैराते हुए |
| जनाब हुसैन साहबने शिष्टमण्डलको बात सहानुभूतिपूर्वक |
| सुनी और फिर बीड़ीका टुकड़ा फेंकते हुए बोले— |
| 'बच्चोंके लिये बस किरायेपर देना मेरे लिये |
| मुमिकन नहीं, हरगिज मुमिकन नहीं।' शिष्टमण्डलके |
| सदस्योंकी पेशानियोंपर परेशानियाँ और निराशाकी सिलवटें |
| उभर पड़ीं। जनाब अहमद साहब खामोशीसे सोफेपर |
| बैठे यह सब कुछ बारीकीसे देखते रहे, अपने शब्दोंकी |
| प्रतिक्रियाको परखते रहे और तभी चर्चाको नया आयाम, |
| नयी दिशा देते, बड़े संजीदाना अंदाजमें कह उठे— |
| 'भाई साहब! आपके बच्चे मेरे बच्चे—एक |
| वालिद अपने नन्हें मासूम मुन्नोंसे उनकी तालीमकी |
| खातिर बसका किराया वसूल करे, यह मेरे लिये मुमकिन |
| नहीं, हरगिज मुमिकन नहीं। बच्चोंके लिये मैं बस, इतना |
| ही कर सकता हूँ कि अपनी बस ही गुरुकुलको भेंट |
| किये देता हूँ।' |
| ज्यों-ही उन्होंने अपनी कीमती बस गुरुकुलको भेंट |
| की, सदस्यगण प्रसन्न एवं अवाक् हो गये और मौकेपर |
| मौजूद चश्मदीद गवाहानका कहना था कि दरहकीकत, |
| उन लमहोंमें मजहबपरस्तीकी दीवारें धड़ामसे गिरकर |
| जमींदोज हो गयी थीं। दरअसल, यही तो तस्वीर है मेरे |
| अमनपसन्द मुल्ककी—यही तो असली तहजीब और |
| तालीम है मेरे मुल्ककी कौमी एकताकी। |
| — राजेन्द्रप्रसाद जैन ►•• |
| |

मनन करने योग्य दरिद्रताका नाशक—गंगाजल पूर्वकालको बात है—लक्ष्मी और दरिद्रादेवीमें संवाद विकृतांग, शठ, अनार्य, कृतघ्न, धर्मघाती, मित्रद्रोही, अनिष्टकारी तथा हृदयहीन मनुष्योंमें ही तेरा निवास है।' हुआ। वे दोनों एक-दूसरेका विरोध करती हुई संसारमें इस तरह विवाद करती हुई वे दोनों श्रीब्रह्माजीके आयीं और दोनों ही कहने लगीं—मैं बड़ी हूँ, मैं बड़ी हूँ। लक्ष्मीने युक्ति दी—'देहधारियोंका कुल, शील और जीवन पास आयीं। उन्होंने उनकी बातें सुनीं और इस प्रकार मैं ही हूँ। मेरे बिना वे जीते हुए भी मृतकके समान हैं।' कहा—'पृथ्वी तथा आप (जल)—ये दोनों देवियाँ मुझसे दरिद्राने भी तर्क उपस्थित किया—'मैं ही सबसे बड़ी हूँ; ही प्रकट हुई हैं। स्त्री होनेके कारण वे ही स्त्रीके विवादको क्योंकि मुक्ति सदा मेरे ही अधीन है। जहाँ मैं हूँ, वहाँ काम, समझ सकती हैं और कोई नहीं। उनमें भी जो कमण्डलुसे क्रोध, मद, लोभ और मात्सर्य—ये दोष कभी नहीं रहते। प्रकट होनेवाली नदियाँ हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उन सरिताओं में भी गौतमी गंगादेवी तो सर्वश्रेष्ठ हैं। अत: वे ही तुम्हारे भय, उन्माद, ईर्ष्या और उद्दण्डताका भी अभाव रहता है।'

दरिद्राकी बात सुनकर लक्ष्मीने प्रतिवाद किया—'मुझसे अलंकृत होनेपर सभी प्राणी सम्मानित होते हैं। निर्धन मनुष्य शिवके ही तुल्य क्यों न हो, सबके द्वारा तिरस्कृत होता रहता है। 'मुझे कुछ दीजिये' यह वाक्य मुँहसे निकालते ही बुद्धि, श्री, लज्जा, शान्ति और कीर्ति—ये शरीरके पाँच देवता तुरंत निकलकर चल देते हैं। गुण और गौरव तभीतक टिके रहते हैं, जबतक मनुष्य दूसरोंके सामने हाथ नहीं फैलाता। अत: दरिद्रे! मैं ही श्रेष्ठ हूँ। तू मेरी बात कान खोलकर सुन ले।' लक्ष्मीका यह दर्पयुक्त वचन सुनकर दरिद्रा बोली— 'लक्ष्मी! मैं बड़ी हूँ—यह बारम्बार कहते तुझे लज्जा नहीं आती ? तू श्रेष्ठ पुरुषोंको छोड़कर सदा पापियोंमें ही रमती

दोनों पृथ्वी और जलके पास गयीं और उन सबको साथ ले गौतमीदेवीके समीप पहुँचीं। भूदेवी और आपोदेवीने गौतमी गंगाजीसे लक्ष्मी और दरिद्राका विवाद स्पष्टरूपसे कह सुनाया। उन दोनोंके विवादको समस्त लोकपाल, पृथ्वी और जल—ये मध्यस्थकी भाँति सुन रहे थे। उस समय गंगाजीने दरिद्रासे कहा—'ब्रह्मश्री, तपःश्री, यज्ञश्री, कीर्ति, धनश्री, यश:श्री, विद्या, प्रज्ञा, सरस्वती, भोगश्री, मुक्ति, स्मृति, लज्जा, धृति, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, जल, पृथ्वी, अहंशक्ति, ओषधि, श्रुति, शुद्धि, रात्रि, द्युलोक, ज्योत्स्ना, आशी:, स्वस्ति, व्याप्ति, माया, उषा, शिवा आदि जो कुछ भी संसारमें विद्यमान है, वह रहती है। जो तेरा विश्वास करता है, उसके साथ तू वंचना सब लक्ष्मीके द्वारा व्याप्त है। ब्राह्मण, धीर, क्षमावान्, साधु, करती है। फिर बड़ी-बड़ी डींगें कैसे हाँक रही है ? मदिरा विद्वान्, भोगपरायण तथा मोक्षपरायण पुरुषोंमें जो-जो रमणीय पीनेसे भी पुरुषको वैसा भयंकर नशा नहीं होता, जैसा तेरे अथवा सुन्दर है, वह सब लक्ष्मीका ही विस्तार है। अधिक समीप रहनेमात्रसे विद्वानोंको भी हो जाता है। लक्ष्मी! तू सुननेसे क्या लाभ—समस्त जगत् लक्ष्मीमय ही है। जिस सदा प्राय: पापियोंके साथ ही क्रीड़ा करती है। मैं योग्य किसी व्यक्तिमें जो कुछ भी उत्कृष्ट वस्तु दिखायी देती है, और धर्मशील पुरुषोंमें सदा निवास करती हूँ। भगवान् वह सब लक्ष्मीमय है। लक्ष्मीसे शून्य कोई वस्तु नहीं है। शिव और श्रीविष्णुके भक्त, कृतज्ञ, महात्मा, सदाचारी, दरिद्रे ! क्या तू इन सुन्दरी लक्ष्मीदेवीके साथ स्पर्द्धा करती हुई लिज्जित नहीं होती। जा, चली जा यहाँसे।' शान्त, गुरुसेवा-परायण, साधु, विद्वान्, शूरवीर तथा पवित्र तबसे गंगाका जल दरिद्राका शत्रु हो गया।

विवादका निर्णय करेंगी।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वे

बुद्धिवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें मेरा निवास है। अत: श्रेष्ठता तो सदा मुझमें ही है। किंतु तू कहाँ रहती है—यह भी सुन ले। तभीतक दरिद्रताका कष्ट उठाना पड़ता है, जबतक पापपारायण राजकर्मचारी विस्टूर खला चुगलाबोर लोशी unarmal का MADE WATH उत्तर एटि हिस्पूरण dash/Sha

'कल्याण'के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् २०१६ ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् २०१६ ई० का विशेषाङ्क 'गंगा-अङ्क' वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, उनसे अनुरोध है कि सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजकर रिजस्ट्रीसे पुनः मँगवानेकी कृपा करेंगे। वी०पी०पी०से पुनः मँगवाने-हेतु अनुरोध-पत्र भेजना चाहिये।

जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी उनके रुपये यहाँ न पहुँचने अथवा उनके रुपयोंका यहाँ समायोजन आदि न हो सकनेके कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता तथा अपनी ग्राहक-संख्या

आदिके विवरणसहित हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें 'कल्याण' सीधे भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजनहेतु पत्र भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—'<mark>कल्याण-कार्यालय', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)</mark>

गीताप्रेससे प्रकाशित—करपात्रीजी महाराजकी पुस्तकें

भिक्तसुधा (कोड 1982)—इसके प्रथम भागमें श्रीकृष्णजन्म, बाललीला, वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला आदिका विशद विवेचन है। द्वितीय भागमें देवोपासना तत्त्व, गायत्री-तत्त्व, शक्तिका स्वरूप, शक्तिपीठ-रहस्य, रामजन्म-रहस्य आदिका तात्त्विक विवेचन है। इसके तृतीय भागमें भगवत्प्राप्ति, नामरूपकी उपयोगिता, मानसी आराधना, भगवत्कथामृत आदि विविध विषयोंपर मार्मिक विवेचन है एवं चतुर्थ भागमें वेदान्तरससार एवं सर्वसिद्धान्त-समन्वय है। मूल्य ₹२००

मार्क्सवाद और रामराज्य—सजिल्द, (कोड 698) पुस्तकाकार—इसमें स्वामीजीने पाश्चात्त्य दार्शनिकों, राजनीतिज्ञोंको जीवनी, उनका समय, मत-निरूपण, भारतीय ऋषियोंसे उनको तुलना, विकासवादका खण्डन, ईश्वरवादका मण्डन, मार्क्सवादका प्रबल शास्त्रीय आलोकमें विरोध तथा न्याय और वेदान्तके सिद्धान्तका विस्तारसे प्रतिपादन किया है। यह राजनीति और दर्शनके विश्वकोशके रूपमें आदरणीय और मननीय ग्रन्थ है। मुल्य ₹१५०

बहुत दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें अब उपलब्ध

श्रीमन्नारायणीयम् — सजिल्द (कोड 639) पुस्तकाकार — यह नारायणीयम् नामक छोटा – सा स्तोत्रात्मक काव्य केरल प्रान्त – निवासी विद्वान् भक्त श्रीभट्टनारायणितिरिकी रचना है। श्रीकृष्णलीलाके लगभग सभी प्रसंग इसमें वर्णित हैं। भिक्तरसका परिपोषक होनेके कारण यह काव्यरत्न श्रीमद्भागवतके समान आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है। भक्त – समाजमें इसका अत्यन्त आदर है। केरलवासी भक्त लौकिक और पारलौकिक कामनाओंकी सिद्धिहेतु इसका नित्य पाठ करते हैं। मूल्य ₹५० (कोड 1606) सटीक, ग्रन्थाकार, तिमल एवं (कोड 908) मूल तेलुग् (कोड 1698) तात्पर्यसहित तेलुग्में भी।

प्रेमयोग (कोड 64) पुस्तकाकार—प्रेम मानव-भावनाका सर्वोत्कृष्ट परिचय है। जगत्में परमात्माके वास्तिवक स्वरूपका परिचय प्रेम ही है। प्रस्तुत पुस्तक श्रीवियोगी हरिजीके द्वारा प्रणीत हिन्दू, मुसलमान, ईसाई प्राय: सभी धर्मावलिम्बयोंके प्रेम-सम्बन्धी सूक्तियोंके आधारपर एक सरस एवं स्वस्थ आलोचनात्मक व्याख्या है। मोह और प्रेम, प्रेमका अधिकारी, लौकिकसे पारलौकिक प्रेम, प्रेममें अनन्यता, दास्य, वात्सल्य, सख्य प्रेम आदि विविध विषयोंकी सुन्दर व्याख्याके रूपमें यह पुस्तक नित्य पठनीय एवं संग्रहणीय है। मुल्य ₹३०



प्र० ति० २०-१-२०१६

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016 |

श्रीमहाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 1468, विशिष्ट संस्करण,

संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹२५०, सामान्य संस्करण (कोड 789)

सजिल्द — इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण

| | मूल्य ₹२००, (कोड 1286) मूल्य ₹२०० गुजराती, (कोड 975) मूल्य ₹२०० तेलुगु, (कोड 1937) बँगला मूल्य ₹१६०, (कोड 1926) मूल्य ₹१७५ कन्नड़ भी उपलब्ध। | | | | | | | | | | |
|-------------------------|---|------|------|-----------------------------|------|------|-----------------------------|------|--|--|--|
| कोड | पुस्तक-नाम | मू०₹ | कोड | पुस्तक-नाम | मू०₹ | कोड | पुस्तक-नाम | मू०₹ | | | |
| 2020 | शिवमहापुराण -मूलमात्रम् | २५० | 1156 | एकादश रुद्र (शिव)-चित्रकथा | 40 | 0228 | शिवचालीसा-पॉकेट साइज | 3 | | | |
| 1985 | <mark>लिङ्गमहापुराण</mark> -सटीक | २०० | 0204 | ॐ नमः शिवाय " | २५ | 1185 | शिवचालीसा-लघु | 2 | | | |
| 1417 | शिवस्तोत्ररत्नाकर-सानुवाद | ३० | 1343 | हर हर महादेव " | २५ | 1599 | श्रीशिवसहस्र नामावलि | ۷ | | | |
| 1899 | श्रावणमास-माहात्म्य " | ३२ | 1367 | श्रीसत्यनारायणव्रतकथा | १२ | 0230 | अमोघ शिवकवच | ₽ | | | |
| 1954 | शिव-स्मरण | १० | 0563 | शिवमहिम्न:स्तोत्र | ٠ | 1627 | रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद | 30 | | | |
| नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार | | | | | | | | | | | |
| | | | | | | | · | | | | |

भागवत नवनीत-गुजराती (कोड 2031) ग्रन्थाकार—प्रस्तुत ग्रन्थ संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराजके द्वारा प्रवचनके रूपमें प्रस्तुत सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत-कथाओंका अद्भृत संकलन है। इसका स्वाध्याय करके पाठक सहज ही श्रीमद्भागवतके अथाह सागरमें अवगाहन करके पूर्ण तृप्तिका लाभ उठाकर भावसमुद्रमें निमग्न हो सकते हैं। श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण जीवन-दर्शन एवं जीवन-जगत्के सम्पूर्ण समस्याओंका

संस्कारप्रकाश (कोड 2033)—प्रस्तुत पुस्तकमें गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनयन, विवाह, अन्त्येष्टि आदि सोलह संस्कारोंका पूर्ण परिचय, उनकी वैज्ञानिकता तथा संस्कार करानेकी प्रक्रियाका सांगोपांग वर्णन किया गया है। मूल्य ₹७५

उत्कृष्ट समाधान है। मूल्य ₹१६० (भागवत नवनीत हिन्दी (कोड 2009) मूल्य ₹१६० भी उपलब्ध)।

एक महापुरुषके अनुभवकी बातें (कोड 1876)—ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रवचनोंसे संकलित इस पुस्तकमें साधकोंके लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातें दी गयी हैं। मूल्य ₹१०

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (सटीक) भाग-१ [बँगला] (कोड 2034) — आदिकवि महर्षि

वाल्मीकिप्रणीत इस महाकाव्यको टीकासहित बँगला भाषामें प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹२५० (भाग २ के प्रकाशन सूचनाकी प्रतीक्षा करें)।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण वचनमु [कनड़] (कोड 2011-2012)—इस दिव्य ग्रन्थके केवल अनुवादको कन्नड भाषामें प्रकाशित किया गया है। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹३४०

खुल गया है — जबलपुर (मध्यप्रदेश) रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म नं०६ पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल।